केरल ज्योति

अगस्त 2025

ISSN 2320-9976
Reference Resource Journal

ISO 9001: 2015

केरल हिंदी प्रचार सभा

सभा परीक्षाओं का दीक्षांत समारोह
डॉ.देवन्द्रकुमार धोदावत आई ए एस उद्घाटन कर रहे हैं।

श्रेष्ठ प्रचारकों का आदर।

सुगम हिन्दी परीक्षा पुरस्कार वितरण - 2024

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक

स्व. के वासुदेवन पिल्लै

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ

डॉ के एम मालती

प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन

प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस

डॉ लता पी

डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो डी तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. एम एस विनयचंद्रन

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)

सदानन्दन जी

मुरलीधरन पी पी

प्रो रमणी वी एन

चन्द्रिका कुमारी एस

एल्सी सामुवल

आनन्द कुमार आर एल

प्रभन जे एस

डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 62 दल : 5 अंक: **अगस्त 2025**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

साहित्य कलानिधि उपाधि से सम्मानित प्रो डी तंकप्पन नायर का व्यक्तित्व : एक लघु झाँकी – **अधिवक्ता (डॉ) मधु बी** 6

राजा रविवर्माचरित महाकाव्य – **प्रो.डी.तंकप्पन नायर** 7

दर्शन माला (अनूदित व्याख्या) – **डॉ नेलसन डी** 9

उदारीकरण का सामाजिक पक्ष – **डॉ नीतू पी जे** 11

अज्ञेय की कहानियों का स्त्री मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन **अतिशय वर्मा** 14

चंद्रकांत देवताले की कविता में राजनीतिक चेतना – **स्मिता जे एम** 19

हिंदी की स्त्री आत्मकथाओं में आर्थिक स्वतंत्रता का सवाल **शिल्पा सुरेष पुल्लाट्टु** 23

भारतमाता के गले का हार है हिंदी – **डॉ गौरव रंजन** 26

रमेश बक्षी के कथा साहित्य में अस्तित्व की तलाश – **नीतु एन एस** 28

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में असुर समाज का यथार्थ **ज्योति एवं डॉ सपना शर्मा** 31

विरुद्ध और रास्तों पर भटकते हुए में चित्रित आधुनिक नारी जीवन **रम्या एस** 35

'ज्यों मेहंदी को रंग' और 'भैरवी' उपन्यासों में अभिव्यक्त दिव्यांगों की समस्याएँ : एक तुलना – **सोजा एस ओ** 37

प्रश्नोत्तरी – **डॉ.रंजीत रविशैलम** 39

समकालीन हिंदी कविता में उपभोक्तावादी समाज की विडंबनाएँ **बिजिना टी** 40

मानस कैलास **मूलः मंजु वेल्लायणि** **अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर , डॉ.रंजीत रविशैलम** 44

देवयानम् (आत्मकथा) **मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना** 46

ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा) **मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार** 48

मुखचित्र : दीक्षांत समारोह में प्रो डी तंकप्पन नायर को 'साहित्य कलानिधि' उपाधि समर्पित करने का दृश्य

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 40/-   आजीवन चंदा : रु. 4000/-   वार्षिक चंदा : रु. 400/-

A /c No. 57022786007   IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222/ 9447657301

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
अगस्त 2025

संपादकीय

साहित्य कलानिधि उपाधि-समर्पण और महाकाव्य विमोचन

केरल हिंदी प्रचार सभा के एम के वेलायुधन नायर प्रेक्षागृह में 4 जुलाई 2025 को आयोजित सम्मान व दीक्षांत समारोह में सभा की उच्च मानद उपाधि से प्रो डी तंकप्पन नायर समादृत हुए। केरल हिंदी प्रचार सभा के अध्यक्ष श्री एस गोपकुमार की अध्यक्षता में संपन्न भव्य समारोह का उद्घाटन भद्रदीप प्रोज्वलित कर केरल राजभवन के अपर मुख्य सचिव डॉ देवेंद्र कुमार धोदावत आई ए एस ने किया। मलयालम के लोकप्रिय कवि एवं फ़िल्म निर्देशक श्रद्धेय श्रीकुमारन तंपी ने अनुग्रह भाषण दिया। उन्होंने बताया कि साधनारत, अनुवादक, वरिष्ठ शिक्षक एवं आदर्श पत्रकार प्रो तंकप्पन नायर को साहित्य कलानिधि उपाधि प्रदान करना केरल हिंदी प्रचार सभा के लिए सारस्वत अर्चना है।

विश्व साहित्य की विख्यात कृतियों के मलयालम में अनुवाद सहित, हिंदी-मलयालम - अंग्रेज़ी में परस्पर अनुवाद, आदर्श पत्रकारिता एवं हिंदी भाषा के प्रचार में योगदान के उपलक्ष्य में ही उन्हें सभा की यह मानद उपाधि भेंट की गई।

तिरानबे की वय में भी उनकी सृजन-शीलता की सुगंध सुधी पाठकों को निरंतर सुवासित करती आ रही है। 'श्रीनारायणगुरुचरित' महाकाव्य हिंदी में मौलिक अद्‌यतन रचना है। इसके पूर्व हिंदी में मौलिक महाकाव्य की रचना पद्‌मश्री डॉ एन चंद्रशेखरन नायर ने की। अब हिंदी में प्रो तंकप्पन नायर द्‌वारा रचित दूसरा महाकाव्य निकला है। डॉ देवेंद्रकुमार धोदावत आई ए एस महोदय ने इसी दीक्षांत समारोह में सभा के मंत्री अधिवक्ता (डॉ) मधु बी को सौंपकर उक्त महाकाव्य ग्रंथ का विमोचन किया।

इस संदर्भ में मधु जी ने महाकाव्य का ज़िक्र करते हुए कहा - "प्रो डी तंकप्पन नायर केरल हिंदी प्रचार सभा की वर्चस्वमयी परंपरा की सुदृढ़ कडी है। 'केरल ज्योति' के मुख्य संपादक के रूप में सेवारत इस महामनीषी ने समय का सदुपयोग करके हमारे लिए एक भव्य महाकाव्य प्रदान किया है। सृजन कार्य उनको ईश्वरीय वरदान है।"

विगत 75 वर्षों से हिंदी भाषा और साहित्य की श्रीवृदधि में यह सौम्य साधक कर्मरत हैं। केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक, प्रथम मंत्री एवं श्रेष्ठ हिंदी प्रचारक के वासुदेवन पिल्लै की जीवनी पर आधारित 'स्मृति काव्य' का प्रणयन पिछले साल हुआ। ज्ञात है कि आपके द्‌वारा रचित हिंदी में मौलिक एक और महाकाव्य 'राजारविवर्माचरित' शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। प्रो डी तंकप्पन नायर जी को हार्दिक बधाईयाँ!

डॉ एम एस विनयचंद्रन
संपादक

साहित्य कलानिधि उपाधि से सम्मानित प्रो डी तंकप्पन नायर का व्यक्तित्व : एक लघु झाँकी

अधिवक्ता (डॉ) मधु बी

29 दिसंबर 1932 को तिरुवनंतपुरम जिले में श्री तंकप्पन नायर का जन्म हुआ था। प्राथमिक, माध्यमिक और स्नातकीय शिक्षा-दीक्षा के बाद आगरा विश्वविद्यालय से इन्होंने हिंदी में एम ए की उपाधि प्राप्त की थी। दिल्ली में स्थित ब्रिटिश राजदूतावास केंद्र में और भारतीय रेल कार्यालय में नौकरी के बाद दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के क्षेत्रीय कार्यालय कोचिन में प्रबंधक के पद पर काम किया था। फ़िर मावेलिक्करा बिशपमूर कॉलेज में प्राध्यापकीय पद पर नई नौकरी में नियुक्त हुए। हिंदी विभागाध्यक्ष के रूप में 1988 को सेवानिवृत्त हुए। तदनंतर केरल हिंदी प्रचार सभा के स्नातकोत्तर केंद्र में प्राचार्य बने। एम के वेलायुधन नायर सभा के मंत्री रहे थे। जब से मैं सभा का मंत्री बना तबसे लगातार सभा से संबद्ध महत्वपूर्ण मुद्दों पर इनका मूल्यवान उपदेश मुझे मिलता रहता है।

'केरल ज्योति' के दीर्घकालीन संपादक रहे। सेवाकाल एवं सेवानिवृत्त काल में इनकी साहित्यिक अभिरुचि में तथा लेखन-कार्य में अभी तक कोई विघ्न नहीं हुआ है।

मलयालम की विख्यात पत्रिका 'कलाकौमुदी के लिए कथाकार के एल पॉल को दिए साक्षात्कार में इनका कथन है-

"लेखन कार्य चाहें तो स्वयं रुक जायें। सुबोध मन से मैं लिखना न छोड़ूँगा। यह मेरी नियति है। मैं लिखता ही रहूँगा। अनूदित हो या मौलिक हो - इनमें कोई खास अंतर मेरे लिए नहीं। कोई उपलब्धि हेतु मैं नहीं लिखता। बाह्य स्वीकृतियाँ एवं उपेक्षाएँ मेरे लेखन में विशेष बदलाव नहीं लाएगी। प्रत्यक्ष दृष्टि में 'प्रवृत्ति' समझें तो भी यह 'निवृत्ति' मार्ग है मेरा।" (आभार अनूदित)

मंत्री
केरल हिंदी प्रचार सभा

राजा रविवर्माचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

(इसी अंक में दी गई सूचना के अनुसार राजा रविवर्माचरित महाकाव्य का प्रारंभिक भाग प्रकाशित किया जा रहा है। - संपादक)

पहला सर्ग

भारतीय चित्रकला

1. महान परंपरा है भारतीय चित्रकला की और उसमें कम
महत्वपूर्ण नहीं है केरल का योगदान और ज्ञाताओं में
भारतीय चित्रकला के राजा रविवर्मा रखते थे विशिष्ट
स्थान जिनमें थी रुचि संगीत साहित्य व वेदांत में भी।

2. जो कुछ भी है आर्ष संस्कृति से संबद्ध वे सब हैं
अभिन्न अंग केरल की संस्कृति के और प्रारंभकाल से
लेकर मानव संस्कृति के प्रकृति के संसाधनों को स्वीकृत
होता रहा है उपादानों के रूप में सर्जनात्मक प्रक्रिया के।

3. होता रहा इन संसाधनों का उपयोग सर्जकों की अपनी
कलात्मक रुचि एवं संकल्पनाओं के अनुसार और प्राप्त है
प्रमाण भी पूरे भारत में ऐसी कलासृष्टियाँ प्रचलित होने के
और उनके वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक और तुलनात्मक निरीक्षण के।

4. भारतीय संस्कृति के अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग हैं भारतीय
वास्तुकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला और कला न केवल
संस्कृति का माध्यम है वरन कला तो है अवश्य उसका
आवश्यक अंग ही पाने को जानकारी भारतीय संस्कृति की।

5. संस्कृति व आध्यात्मिक साधना का उत्कृष्ट दिग्दर्शन करती है
भारतीय कला और उसका संबन्ध है योग-ध्यान में भी और
योगी अरविन्द के अनुसार स्थापत्य चित्रकला और मूर्तिकला हैं
भारत की धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनुभूति के लावण्यमयी पक्ष।

6. धार्मिकता है भारतीय कला की सबसे बड़ी विशेषता और
भारतीय स्थापत्य कला तक्षण कला व चित्रकला पर गहरी छाप है
भारतीय धार्मिक विश्वासों परंपराओं और विचारों की और भारत में
कला का विकास हुआ है उपज के रूप में धार्मिक विकास की ।

7. संकल्पना रही है भारत में कला कला केलिए नहीं
बल्कि रही है कला धर्म केलिए और कला रही है एक माध्यम
और महत्वपूर्ण पहलू धार्मिक साधना का और यह कथन
लागू होता है जैन धर्म और बौद्ध धर्म के संबंध में भी।

8. भारतीय कला की एक प्रमुख विशेषता है उसकी अभिव्यक्ति-
प्रधानता और कलाकार ने अनेक उपायों का सहारा लिया है
गूढ़ और गंभीर आदर्शों और आध्यात्मिक चिन्तन के सूक्ष्म भावों की
अभिव्यक्ति के लिए और इसमें प्रकट की है अभूतपूर्व कुशलता।

9. चित्रकला में रंगों का प्रयोग किया गया है ऐसा ही
जिससे हो सके विचार और अभिव्यक्ति का समन्वयात्मक
प्रतिनिधित्व और दर्शक अनुभव कर सकें उस सामंजस्य का और है
प्रतीकात्मकता भारतीय कला का गंभीर और व्यापक गुण।

10. भारतीय जनजीवन के भी पर्याप्त निकट है भारतीय कला
और अजन्ता की कला के विषय हैं धार्मिक होने के साथ-
साथ लौकिक भी और गुप्तकालीन भारतीय कला; करती है
प्रतिबिंबित तत्कालीन भारत के वैभव और सुख-समृद्धि को।

11. मत था उन्नीसवीं सदी के कुछ ख्यातिप्राप्त पश्चिमी विद्वानों का
कि विकास नहीं हुआ ललित कलाओं का प्राचीन भारत में और
भारतीयों को ज्ञान नहीं था प्रकृति में सौंदर्य तत्त्व की सत्ता एवं
महत्ता का और अज्ञात था उन्हें चित्रकला को ललित कला के रूप में।

12. कालांतर में तथ्य विषयक भ्रांतियों का हुआ निवारण
विद्वानों के श्लाघनीय कार्यों द्वारा और हुआ यथार्थ निरूपण
भारतीय कला की प्रतिष्ठा का और माना गया कि ललित
कला का उद्देश्य वही है जो है काव्य या नाट्य साहित्य का।

13. मिलती है प्राचीन भारतीय वेश-भूषा के क्रमिक विकास की
जानकारी हमें साहित्य के अतिरिक्त मूर्तिकला व चित्रकला से
अधिक और यों प्राचीन भारतीय कला दिग्दर्शन करती है भारतीय
संस्कृति की चित्ताकर्णक वैविध्य में भी गरिमामयी झाँकियों को।

14. उद्देश्य है काव्य या चित्रकला सदृश ललित कलाओं का
रसास्वादन कराना और इसके अतिरिक्त नहीं है ज्ञानवर्द्धन या
शिक्षा प्रदान करना और जो सहृदय है समर्थ उससे तादात्म्य
करने या एकीभूत होने में वही पा सकता है रसास्वादन।

15. रमणीय वस्तु में होती है सामर्थ्य रस को उद्रेक करने में
और इसलिए अन्तर होता है रसास्वादन और सौन्दर्यानुभूति में
और सुन्दर शब्द से अभिप्रेत होता है बाह्य सन्तुलन और
नैसर्गिक सौन्दर्य और समानार्थक नहीं हैं सुंदर एवं रमणीय।

16. परिभाषित करना कठिन है सुन्दरता को फिर भी कह
सकते हैं कि यह एक सन्तुलित अवस्था है या आदर्श
व्यवस्था जिसका उपयोगी होने या नहीं होने का प्रश्न
नहीं उठता और बाधक है यह तत्व चित्रकला को भी। (क्रमशः)

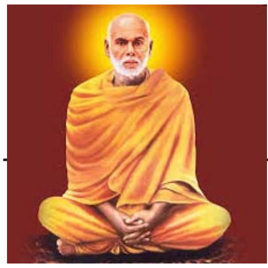

दर्शन माला

डॉ नेलसन डी

अध्यारोप दर्शन

(केरल के महान संत, ऋषि-कवि, समाज सुधारक श्रीनारायणगुरु द्वारा संस्कृत में रची गई वेदांत-संबंधी रचना है 'दर्शनमाला।' दस-दस श्लोकों के दस भाग इसमें समाहित हैं। मुनि नारायण प्रसाद की मलयालम-व्याख्या का हिंदी भाषांतरण डॉ नेलसन डी ने तैयार किया है।– संपादक)

जनसाधारण के अनुभव से दर्शनमाला का आरंभ होता है - ऐसे अनुभव से कि हम और यह दृश्य-जगत् जिस प्रकार देखा जाता है उसी प्रकार ही यह यथार्थ है। उस समय ऐसा एक प्रश्न उठता है कि यह कैसे हुआ? इस प्रश्न का उत्तर देने योग्य है यह दर्शन।

इस अध्याय को दिया हुआ नाम 'अध्यारोप दर्शन' है। वेदांत का एक सांकेतिक पद है अध्यारोप। इसका अर्थ है अधिष्ठान में आरोपित करने वाला। समस्त में अधिष्ठित होकर केवल एक ही सत्य है। यहाँ दिखाई देनेवाला सब उसमें आरोपित है। जो आरोपित है वह सच्चाई नहीं है। पानी को हम लहर के रूप में देखते हैं। लहर की अपनी सच्चाई नहीं है। सच्चाई केवल पानी है। लहर तो पानी में आरोपित एक अस्थाई रूप मात्र है। उसी प्रकार सबका आधारभूत एक सत्य है। उसमें आरोपित है प्रपंच। जनसाधारण उसे आरोपित और असत्य न मानते और वे उसे सत्य माननेवाले हैं। उनके होनेवाले संशयों का यहाँ निवारण किया जाता है। यहाँ दिखाई देनेवालों में अधिष्ठान सत्य केवल एक है और उससे लगातार गूँज रहा है। लेकिन आदि से अंत तक यही विवरण दिया जाता है कि प्रपंच की सृष्टि कैसे हुई।

अध्याय 1

आसीदग्रेf सदेवेदं भुवनं स्वप्रवत् पुनः।
ससर्ज सर्वं संकल्पमात्रेण परमेश्वरः।।

अग्रे - आदि में (सृष्टि में); इदं भुवनम् - यह प्रपंच; असत् एव - सत्तारहित ही (सच्चाई रहित ही); आसीत् - था; पुनः - बाद में; परमेश्वरः - परमेश्वर; सर्वम् - सबको; संकल्प मात्रेण - केवल कल्पना से; स्वप्रवत् - सपने की तरह; ससर्ज - सर्जन (निर्गम) किया।

आदि में यह प्रपंच सच्चई रहित ही रहा। बाद में परमेश्वर ने केवल कल्पना से सपने की तरह सबकी सृष्टि की।

गौरव स्वभाव वाले एक ग्रंथ-निर्माण के आरंभ में मंगलाचरण करने की परंपरा बहुत पहले से ही है। इष्ट देवता की स्तुति, ईश्वर की वंदना, अपने गुरु की वंदना, वह इस तरह के किसी भी रूप में होती है। कुछ लोग प्रत्यक्ष ही मंगलाचरण करना चाहते हैं। कुछ लोग केवल मंगलाचरण की ध्वनि करना चाहते हैं। नारायण गुरु द्वितीय पक्ष के बीच आते हैं। 'शिवशतक' को छोड़कर उनकी सभी कृतियाँ केवल कुछ सूचनाओं से मंगलाचरण का निर्वाह करती हैं। 'दर्शनमाला' का मंगलाचरण भी इसी प्रकार का है।

'आसीत्' शब्द से आरंभ करते हैं। अर्थ है 'था'। फिर भी पहले होने वाले सभी कार्यों के संबंध में कहते समय 'आसीत्' शब्द का उपयोग नहीं करना पड़ता। यह केवल वेदों और उपनिषदों में प्रयोग करनेवाला एक शब्द है। केवल इस प्रकार सोचने के अवसर पर इस शब्द का प्रयोग करना पड़ता था कि यह प्रपंच पहले कैसी अवस्था में था। अतः साधारण संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग नहीं है।

इस कृति का आरंभ 'अ' अक्षर से होता है। भगवान् ने भगवद् गीता IX.33 में कहा है कि 'अक्षरों में अकार मैं ही हूँ'। इस प्रकार देखें तो भगवत् स्मृति से ही इसका आरंभ होता है।

जो आदि में था वह फिर कभी नहीं घटता। वह हमेशा रहेगा ही। अतः आसीत् शब्द स्थाई सत्य की सूचना देता है। इस परामर्श के साथ आरंभ करने में मंगलाचरण ही नहीं, परमेश्वर शब्द भी इस श्लोक में आता है। यहाँ कहा हुआ परमेश्वर परमशिव नहीं है। ईश्वर भाव में परम स्थान होने वाला है। ईशन करनेवाला ईश्वर - राज करनेवाला, आधिपत्य का निर्वाह करनेवाला आदि अर्थ हैं। 'श्रेष्ठ' अर्थ में वर भी लगाते समय ईश ईश्वर हो गया।

सभी शिक्षा देते हैं कि ईश्वर ने संपूर्ण प्रपंच की सृष्टि की। यह पूछने की संभावना होती है कि ईश्वर की सृष्टि किसने की। ईश्वर के स्रष्टा दूसरे ईश्वर के बारे में कहें तो यह प्रश्न उठने की संभावना होती है कि उस ईश्वर की सृष्टि किसने की। इस प्रकार कितनी ही बार पूछ सकते हैं! परंतु कहीं अंत नहीं होगा! यह हमारे विचार में होने वाला एक दोष माना जाता है। इस दोष का नाम अनवस्था है। इस प्रकार का दोष न होने के लिए 'ईश्वर' कहने के बदले में परमेश्वर कहा गया। इसका अर्थ है परम ईश्वर। मतलब यह है कि इस ईश्वर की सृष्टि के संबंध में कोई प्रश्न मत पूछो। यह इस प्रकार पूछने की तरह असंबंध है कि पहली 'बस' से। पहली 'बस' कौन सी है? परमेश्वर का सृष्टि संबंधी परामर्श भी मंगलाचरण का भाग माना जा सकता है।

सूचना

यू जी सी केयर लिस्ट अब नहीं रही। यू जी सी द्वारा 16-07-2025 को पारित सूचना के अनुसार अब हमारी विशिष्ट पत्रिका 'रफेरेंस रिसोर्स पत्रिका' के रूप में सेवाएँ प्रदान करेगी। पत्रिका के पाठकों -ग्राहकों के सूचनार्थ यह दिया जा रहा है।

संपादक, केरल ज्योति

केरल ज्योति के सुधी पाठकों से निवेदन करता हूँ कि केरल ज्योति पत्रिका में धारावाहिक प्रकाशित श्रीनारायणगुरु चरित महाकाव्य का प्रकाशन पुस्तक के रूप में हो चुका है इसलिए पत्रिका के आगे के अंकों में उसका प्रकाशन नहीं होगा और उसकी जगह प्रो.डी.तंकप्पन नायर द्वारा रचित राजारविवर्माचरित महाकाव्य धारावाहिक प्रकाशित होगा। आशा है कि पाठकों का सहयोग अवश्य मिलेगा। सधन्यवाद।

अधिवक्ता (डॉ) बी.मधु
मंत्री

उदारीकरण का सामाजिक पक्ष

डॉ नीतू पी जे

उदारीकरण मूलतः एक आर्थिक परियोजना है जिसमें पूंजी की सारी ज़ंजीरें खोल दी जाती हैं। इससे बाज़ार अनियंत्रित हो जाता है। तब ज़्यादा मुनाफा कमाने का मौका मिलता है। नब्बे के दशक में भारत ने अर्थनीति को सुधारने के बहाने आर्थिक क्षेत्र में एक नयी मॉडल को अपनाया जो उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण के नाम से जाना जाता है। उदारीकरण की पृष्ठभूमि तैयार करने के पीछे कई अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं एवं पूंजीवादी देशों का हाथ है। उनका लक्ष्य था पूंजी का स्वतन्त्र व्यापार। भारत जैसे एक मिश्रित अर्थव्यवस्था स्थित देश में उदारीकरण से सिर्फ चंद लोगों का कल्याण होता है। क्योंकि आधा पूंजीवादी और आधा समाजवादी व्यवस्था में अक्सर पूंजी बाकी हिस्से का अतिक्रमण करने की कोशिश करती है। अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं, जैसे विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश, द्वारा प्रतिपादित होने के कारण उदारीकरण हमेशा पूंजी और बाज़ार का वर्चस्व बनाए रखने की कोशिश करता है। राजकिशोर के अनुसार "इसके मुख्य मानक पहलू कुछ इस प्रकार हैं - राजकोषीय घाटा कम करो, सरकारी अनुदान हटाओ, मुद्रा का अवमूल्यन करो, आयात-निर्यात पर से अंकुश हटाओ तथा विदेशी पूंजी का क्षेत्र विस्तृत करो।"[1] अनुदान हटाना देश के छोटे-मोटे व्यापारियों के लिए भारी पड़ता है। नियंत्रण हटाकर सबकुछ खुला छोड़े का मतलब है बहुराष्ट्रीय कंपनियों का भारत में आना और कारोबार करना आसान बनाना। उदारीकरण का स्वरूप आर्थिक होने के बावजूद भी यह प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से समाज के हर तबके के लोगों पर प्रभाव डालता है। साहित्य के सभी विधाओं की तरह कहानियों में भी उदारीकरण की त्रासदी पर आक्रोश देख सकते हैं।

जयनन्दन की कहानी 'घर फूँक तमाशा' की टेकलाल की नींद उठ गयी है। जिस कारखाने में वह काम करता था वह किसी अज्ञात कारण से अचानक बंद हो गयी है। पैसे के अभाव में घर की चीज़ें एक-एक करके बिक रही हैं। उनमें कई ऐसी चीज़ें थीं जो बड़ी इच्छा से उसने पैसा जोड़कर खरीदा था। टेकलाल का बड़ा बेटा विशेष बेरोज़गार है। अभाव के कारण उसको बीच में पढ़ाई छोड़नी पड़ी। भारत में उदारीकरण के चलते हज़ारों संस्थान बंध हो चुकी हैं। कम्प्युटर और रोबोट आदमियों की जगह ले रहे हैं । मानव श्रम की ज़रूरत कम पड़ रहा है। इसलिए कंपनियों में छँटनी और तालाबंदी हो रहे हैं। टेकलाल का कारख़ाना बंद पड़ने से बच्चों की पढ़ाई, बीमारी का इलाज, शादी-ब्याह, ज़िंदगी की हँसी-खुशी और शौक- लुत्फ़ सबकुछ रुक गया है। कील-कांटी बनाने वाली स्टील वायर प्रॉडक्ट लि. नामक कंपनी में वह काम करता था। कील के अलावा नट-बोल्ट इसके मुख्य उत्पाद थे। इससे कई स्ट्राक्चर खड़े हुए हैं, मोटर साइकल के पहिये, छतरियाँ, वाटर टावर, रेल पटरियाँ, छतें आदि इन उत्पादों से बनीं थी। उदारीकरण के बाद बाज़ार में यहाँ के उत्पादों के लिए कोई जगह नहीं बचा। विदेशी उत्पादों के सामने देशी उत्पादों का बिकना मुश्किल है। देशी बाज़ारों को घाटे का सौदा करनी पड़ती हैं। घाटा बढ़कर जब बेक़ाबू हो जाता है तब कारख़ाना चलाने से ज़्यादा फायदेमंद है उसका न चलाना।

पहले स्टील वायर प्रॉडक्ट लि. मुनाफे में चल रहा था। वैश्वीकरण की आँधी ने उसकी रफ़्तार को धीमा कर दिया। कारख़ाना बंद पड़ने के बारे में लेखक का कहना है- "आज उन मूलभूत उत्पादों की निर्माता खुद ही टिका न रह सका....दूसरों को थामने का ज़रिया उपलब्ध कराने वाला खुद ही थामे रहने के लिए ज़रिये का मोहताज हो गया। यह कैसी विडंबना है?"[2] अब देश की अच्छी-भली चलने वाली हज़ारों फैक्टरियाँ बंद हो चुकी हैं और लाखों कामगार बेरोज़गार हो गए हैं। हमेशा हँसने और मज़ाक करने वाले चेहरे मुरझा गए हैं। आर्थिक अभाव के कारण टेकलाल का दोस्त सोनाराम की बिन ब्याही बेटी घर छोड़कर भाग जाती है। बेटी की शादी के लिए सोनाराम ने जो पैसा जोड़ रखा था वह इस बीच खर्च हो जाता है। साथ ही पत्नी के इलाज के लिए घरेलू सामान, टी वी, अलमारी,

डाइनिंग सेट सभी बिक गए। उदारीकरण परंपरागत उद्योगों को बर्बाद करता है। वित्तीय और तकनीकी रूप से सक्षम विदेशी कंपनियों से प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता यहाँ की कंपनियों को नहीं हैं। इसके लिए तकनीक, अनुदान और खूब निवेश की ज़रूरत पड़ती है। सरकार भी जब पूँजीपतियों के ही हित ताकता है तब देशी व्यापार का सर्वनाश होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। सरकार बस एक सेल्समैन की भूमिका अदा करता है जिसका एकमात्र काम है विदेशी पूंजी को यहाँ पनपने का मौका देना। कृषि और छोटे व्यापारों को मिलने वाली अनुदान भी अब नहीं मिल रहा। जो कुछ भी यहाँ हो रहा है वह सिर्फ बड़े औद्योगिक घरानों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित में हैं।

"लिबरलाइज़ेशन ने बड़ी कंपनियों और बहुराष्ट्रीय निगमों की संवृद्धि को सुनिश्चित किया लेकिन परंपरागत कुटीर और लघु पैमाने के उद्योगों को, विशेष रूप से सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े राज्यों में, बुरी तरह प्रभावित किया। लघु उद्योग बड़े उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में अक्षम हैं और इन्हें सफल होने के लिए तकनीकी पहुँच और नेटवर्क एवं अधिक वित्त और अनुदान की आवश्यकता है।"[3] सरकार की तरफ से कारखाने को अनुदान मिलना बंद हो गया। बिजली काटने से प्रॉडक्शन रुक जाता है। फायदे में चलने वाली मिल ने इस तरह दम तोड़ दिया। इस बीच टेकलाल की बड़ी लड़की दसवीं फ़ेल हो जाती है जो अब तक क्लास में 'पाँच अव्वलों' में शामिल थी। छोटी लड़की को सरकारी स्कूल में जाना पड़ा जिससे वह हीनभावना से ग्रस्त रहने लगती है। यह सब आर्थिक अभाव के कारण ही हुआ है। छोटा बेटा अशेष इंजीनियरिंग की पढ़ाई बीच में छोड़ कर घर छोड़कर चला जाता है। बड़े बेटे विशेष को एक दिन पुलिस असामाजिक तत्वों में शामिल होने के कारण गिरफ्तार करती है।

कारखाने का बंद होना कई लोगों की ज़िंदगी पर असर करता है। लेखक के मुताबिक-"कारखाना बंद होने के कारण आस-पास के अन्य दूकानें भी बंद हो गयीं। जैसे बीड़ी, चाय, पान, पकौड़ी आदि की कई गुमटियाँ अब नहीं रहे। कर्ज़ लेकर लोग शराब पीने लगे। आबाद होने के लिए शायद कुछ आसार बचा नहीं बाकी तो बर्बाद होने की राह पर वे बढ़ गए।"[4] यहाँ देख सकते हैं कि पैसे के अभाव में समाज की क्या दुर्गति हो गयी है। अर्थ सभी माजरे का जड़ है और मरहम भी। लोग बुरी आदतें पालने लगे। आखिर इसका ज़िम्मेदार कौन है? इसका जवाब लेखक विशेष के माध्यम से दे रहे हैं। वह सवाल उठाता है - "आखिर ऐसा क्यों है कि हमारी किस्मत दूसरों की मर्ज़ी पर डिपेंड हो जाती है। दूसरों की किये की सज़ा हमें भोगनी पड़ती है। चंद लोग मूर्खता और नालायकी करते हैं और इससे त्रस्त पूरा देश हो जाता है। आखिर ये कारखाने बंद क्यों हो रहे हैं? इस घर फूँक तमाशा का कौन ज़िम्मेदार है?"[5] नेताओं के लिए बस एक कांट्रैक्ट पर दस्तख़त करना था। भारत जैसे एक बड़ी आबादी वाली विकासशील देश में उदारीकरण क्या परिणाम लाएगा यह सोचे बिना करोड़ों के सपने को चूर चूर कर दिया। देशी उद्योगों को बंद करके, बेरोज़गारी बढ़ाकर तमाम जनता की खुशियों पर एक साथ सेंध लगाना शायद उदारीकरण का लक्ष्य है।

उदारवाद का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है निजीकरण जहाँ सार्वजनिक क्षेत्र को निजी कंपनियों के हवाले करते हैं। अधिग्रहण और विलय के माध्यम से भारत की अधिकांश सार्वजनिक सेवा क्षेत्र आज निजी कंपनियों के पास है। **जितेंद्र भाटिया** की कहानी 'ग्लोबलाइज़ेशन' में निजीकरण के बाद भारत की अस्थाई मज़दूरों की बदहाली का चित्रण देखने को मिलता है। एक तो इन्हें हर रोज़ काम नहीं मिलता, काम की तलाश में इधर-उधर भटकना पड़ता है तो दूसरी तरफ ठेकेदारों द्वारा इनका आर्थिक शोषण होता है। सदाशिव नारायण मोरे सुबह-सुबह अपने परिवार समेत फ़ैक्टरी की गेट तक पहुँच जाता है। परिवार में पत्नी के अलावा बहन और दो छोटे बच्चे हैं। इस कहानी में देख सकते हैं कि कैसे लोग अपनी किस्मत आज़माने के लिए एक कंपनी की गेट से दूसरी कंपनी की गेट तक सुबह-सुबह भागदौड़ करते हैं। कभी-कभी काम मिलने के लिए पगार की चालीस रुपये में से सौदा करना पड़ता है। कंपनी मंदी में चल रही थी। इसलिए अस्थाई मज़दूरों को हर रोज़ काम मिलना मुश्किल था। कभी बीस और कभी दस की कटौती पर ही काम मिलता था। पिछले दो दिनों से नारायण के परिवार में सिर्फ उसकी औरत को ही काम मिल रहा था वह भी बीस रूपए की कटौती पर। इतने कम पैसे में इस परिवार की एक दिन की गुज़ारा भी बहुत मुश्किल है। उस

कंपनी में अस्थाई मज़दूरों को काम पर रखने का ज़िम्मा शिरके सेठ पर था। उस दिन सिर्फ चार मज़दूर चाहिए था। शिरके तीन नाम ले चुका था । नारायण मौका गवाना नहीं चाहता था । उसको लगा कि उसके लिए आज चानस मिलना संभव नहीं है। "फिर आखिरी बदहवासी में अचानक बिजली की तेज़ी से अपनी दो उँगलियाँ हवा में उठा दीं! दो उँगलियों का मतलब था दुगुनी यानी बीस रुपए की कटौती ...."[6] वह जानता है कि यह घाटे का सौदा है। फिर भी कुछ न मिलने से यही सही। मोरे की घर की हालत बहुत खराब है। आर्थिक विषमता के कारण दो कप चाय चार लोग मिलकर पीते हैं। कभी-कभी घर में चूल्हा नहीं जलता। एक पाव रोटी खरीदने के लिए भी सोचना पड़ता है। आज भूखा रहकर अगले दिन के लिए खाना बचाते हैं और अगले दिन तक खाना बासी हो जाता है और यह लोग वही खाते हैं। काम के बीच नारायण को भूख लगती है। "उसे याद आया, सुबह से उसने कुछ नहीं खाया था। कम पानीवाली ईरानी चाय के साथ 'कांदा भजिए' नारायण की खास कमज़ोरी थे, लेकिन यह लालसा बेमतलब थी क्योंकि जेब में बचे हुए छुट्टे पैसे उसने दोपहर के खाने के वक़्त 'उस्सल' खरीदने के लिए बचाकर रखे थे। ..... बेहद विरक्त भाव से उसने अपनी भूख को समेट लिया।"[7] यहाँ देख सकते हैं कि उदारीकरण भारत वासियों पर इतना उदार है कि उन्हें एक वक़्त की रोटी भी बहुत मुश्किल से मिल रही है।

भारत में अस्थाई मज़दूरों की संख्या बहुत बड़ी है। इनकी रोज़गार अनिश्चित होती है। अक्सर खराब स्थितियों में इनको काम करना पड़ता है। काम करने का समय भी निश्चित नहीं है। वेतन भी बहुत कम मिलता है। दूसरों को मिलने वाली ई.एस.आई जैसी सुविधाएँ भी इनको नहीं मिलती। उपर से आर्थिक शोषण भी झेलना पड़ता है जैसे यहाँ शिरके सेठ इनके साथ करता है। एक दिन सुनने में आया कि कंपनी का साठ टक्का हिस्सा एक कोरियन कंपनी को बेच रहे हैं। नारायण डरने लगा । पूंजी और तकनीकी क्षमता में सक्षम उस विदेशी कंपनी के सामने हम तो कुछ भी नहीं है। मशीन के सामने मानव श्रम की ज़रूरत भी कम है। कैंटीन में कोई बोल रहा था "तुम लोग साला डेढ़ सौ मानुस आठ कलाक झक मारके सौ पीपा सड़ेला माल निकालता है ! .....अभी साला चीनी-जापानी चिंग-चुंग नया मशीनरी लगाएगा, एक सौ गधा लोक को गेट आउट करेगा और पचास मानुस से दौ सौ पीपा माल निकालेगा, चकाचक!"[8] नारायण तो अस्थाई मज़दूर है, उसे अपना भविष्य बहुत साफ़ दिखने लगा जैसे यहाँ के दूसरे कई मज़दूरों की तरह।

संक्षेप में, इन कहानियों में उदारीकरण का निर्मम रूप देखने को मिलता हैं। आर्थिक सुधार ने देश में कई आर्थिक और सामाजिक विषमताएँ पैदा की हैं। सुधार का फायदा सिर्फ अमीर लोगों को ही मिलता है। पहली कहानी में इसका घातक रूप देखने को मिला है। अर्थ के अभाव में एक भरा-पूरा घर बर्बाद हो जाता है। समाज गलत राहों पर चलने लगता है। दूसरे में पहले से ही आर्थिक विपन्नता से जूझने वाले लोगों के सामने अपने भविष्य को लेकर अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। एक आत्मनिर्भर अर्थ व्यवस्था के लिए घरेलू पूंजी और श्रम की भी ज़रूरत है। सरकार ने कामगारों की जीवन सुरक्षा का इंतज़ाम किए बिना ही नयी अर्थनीति को अपनाकर लाखों के घरों को जलाने का काम कर दिया है। अर्थनीति ऐसी होनी चाहिए जिससे देश समृद्ध हो, सबको रोज़गार मिले तथा जनता का जीवन-स्तर बेहतर हो। यदि वह लक्ष्य अधूरा रह जाता है तो आर्थिक सुधार पर पुनर्विचार होनी चाहिए।

संदर्भः

1. राज किशोर -उदारीकरण की राजनीति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1998, पृ. 20
2. जयनन्दन - घर फूँक तमाशा, ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 03
3. कमल नयन काबरा -भूमंडलीकरण के भँवर में भारत, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2005, पृ. 79
4. जयनन्दन -घर फूँक तमाशा, ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 08
5. वही- पृ. 02
6. जितेंद्र भाटिया-सिद्धार्थ का लौटना, आधार प्रकाशन, हरियाणा, 2002, पृ. 13
7. वही- पृ. 15
8. वही- पृ. 18

पोस्ट डॉक्टरल फेलो, हिन्दी विभाग

कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय , केरल - 682022

अज्ञेय की कहानियों का स्त्री मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन

अतिशय वर्मा

अज्ञेय(सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन, 'अज्ञेय') हिंदी साहित्य के महान विभूतियों में से एक हैं। इनका गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं पर बराबर अधिकार था । ये प्रयोगवाद और तारसप्तक के प्रवर्तक के रूप में जाने जाते हैं। वैचारिकी की दृष्टि से ये व्यक्तिवाद के अधिक निकट दिखाई पड़ते हैं। इनकी रचनाएँ साहित्यिक जगत में अद्वितीय महत्व रखतें हैं। इन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, यात्रावृतांत तथा संस्मरण जैसी विधाओं में उत्कृष्ट रचना कार्य किए हैं।

अज्ञेय अपने जीवन में कई दर्शनों और विचारों से प्रभावित रहें हैं जो कि इनके रचनाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है उदाहरण स्वरूप इनकी कविता असाध्य वीणा पर चीन और जापान के बौद्ध दर्शन के ज़ेनवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है । वहीं इनका उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' सिग्मण्ड फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से और 'अपने-अपने अजनबी' किर्केगार्द और ज्यां-पॉल सार्त्र के अस्तित्ववाद दर्शन से प्रभावित है। अज्ञेय की साहित्यिक रचनाशीलता को जिस व्यक्ति ने सर्वाधिक प्रभावित किया वे पश्चिमी साहित्यकार नई समीक्षा के नव्य शास्त्रवादी आलोचक टी एस एलियट हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित निर्वैयक्तिकता सिद्धांत, परंपरा सिद्धांत और वस्तुनिष्ठ समीकरण इन तीनों ही सिद्धांतों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इन्हीं कारणों से कुछ प्रगतिवादी और मार्क्सवादी आलोचक इनके रचना कर्म को पश्चिम की सस्ती नकल कह कर खारिज कर देते हैं। व्यक्तिवादी प्रकृति के होने के कारण प्रगतिवादी आलोचक इनके काव्यगत रचना शिल्प को रूपवादियों और कलावादियों के समकक्ष रखते हैं। तथा इनको लघुमनावतावाद के पोषक के तौर पर देखते हैं। परंतु यदि हम निष्पक्ष होकर सच्चाई की पड़ताल करें तो पाते हैं कि अज्ञेय की व्यक्तिवादी दृष्टि कभी भी रूपवाद का समर्थन नहीं करती अपितु वे सदैव सौंदर्यबोध और शिवत्व बोध के पक्षधर थे।

बीज शब्द : अज्ञेय, फ्रायड, स्त्री, मनोविज्ञान, अहं, इदम, परम अहं, लिबिडो, कुंठा, हीनभावना, निरर्थकता, अजनबीयत।

मनोविश्लेषणवाद का सैद्धांतिक पक्ष: पाश्चात्य विचारक सिग्मंड फ्रायड ने मनोचिकित्सक के रूप में कई वर्षों तक अपने रोगियों की मनोदशाओं का अध्ययन और विश्लेषण किया। तत्पश्चात उन्होनें काम चेतना (लिबिडो) के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उनका मानना था कि मनुष्य समस्त कार्य अपने काम इच्छाओं से प्रेरित होकर ही करता है। अतः साहित्यिक रचनाधर्मिता भी इसी लिबिडो का प्रतिफलन है। उन्होनें इलेक्ट्रा और ईडिपस नामक दो ग्रंथियों के विषय में बताया। इलेक्ट्रा उस स्त्री का द्योतक है जिसे अपने पिता के प्रति प्रेम की अनुरक्तिया अभिलाषा हो और एडिपस उस पुरुष का प्रतीक है जिसे अपनी माँ के प्रति अनुरक्ति हो। फ्रायड ने मन के तीन अवस्थाओं का वर्णन किया है चेतन, अवचेतन और अचेतन।

चेतन मन हमारे मस्तिष्क का वह हिस्सा है जिसमें हम वर्तमान में सक्रिय रूप से सोचते हैं। इसमें उपस्थित सूचनाओं, तथ्यों तथा भावों और विचारों को हम अपने सुविधानुसार प्रकट करते हैं चेतन मन ही तार्किक बोध और निर्णय लेने में सक्षम होता है। चेतन मन की इच्छाओं को हम सहजता से प्रकट कर सकते हैं। तथा अवचेतन मन मस्तिष्क का वह भाग है जिसमें हमारी आदतें, विश्वास, यादें और अनुभव संग्रहित होते हैं। जिसे हमारा अचेतन मन दैनिक व्यवहार में स्वचालित रूप में संचालित करता है। अवचेतन मन हमारे भावनाओं को प्रभावित करता है। यह चेतन और अचेतन के बीच की कड़ी है क्योंकि ये मन स्थितिपरक और अवसरवादी होता है और स्वयं के अनुकूल परिस्थितियों में ही अपनी इच्छाओं को प्रकट या पूर्ण करता है। वहीं अचेतन मन मस्तिष्क का वह स्तर है। जिसमें हमारी दबी कुचली दमित इच्छाएँ ,भावनाएँ और बचपन के अनुभव होते हैं। जिन्हें हम जानबूझकर दबाते हैं अचेतन मन की यादें, इच्छाएँ या अनुभव हमारे नियंत्रण के बाहर होती हैं जिन्हें हम सचेत होकर चेतन रूप में अभिव्यक्त नहीं

कर पाते हैं। फ्रायड का मानना है कि मनुष्य की जो सबसे अनैतिक और निकृष्ट इच्छाएँ हैं जो मूलतः यौन इच्छाएँ होती हैं। वे अचेतन मन में ही वास करती हैं जिन्हें अभिव्यक्त करना किसी भी सभ्य समाज में संभव नहीं हैं। इसलिए ये इच्छाएँ अवचेतन मन के स्तर पर कल्पनाओं और सपनों के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं।

वहीं अज्ञेय यौनिकता पर विचार करते हुए उसे नैतिकता से पृथक कर के देखते हैं उनका मानना है कि यौन संबंधित अतरंगता के क्षण नैतिकता के निर्धारक तत्व नहीं हो सकते। अज्ञेय ने 'तारसप्तक' की भूमिका में कहा है-"आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति सेक्स संबंधी वर्जनाओं से आक्रांत हैं, उसका मस्तिष्क दमन की गई सेक्स की भावनाओं से भरा हुआ है। इसलिए उसकी सौंदर्य भावना भी सेक्स से पीड़ित है।"[1] इसीलिए वे कहते हैं कि आज के सामान्य मनुष्य का मन यौन कुंठाओं से भरा पड़ा है। धर्मवीर भारती भी यौनाचर संबंधी क्रियाओं को प्राकृतिक और नैसर्गिक मानकर उसे सहज और स्वच्छंद रूप में स्वीकार करते हैं जिसे हम उनकी कविता 'गुनाह का दूसरा गीत' में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। "न हो यह वासना, तो जिंदगी की माप कैसे हो?/किसी के रूप का सम्मान मुझको, पाप कैसे हो?"[2]

फ्रायड ने मन की व्याख्या करते समय इच्छाप्रेरित मनुष्य के व्यवहार को आधार बनाकर उनकी इच्छाओं को तीन भागों में विभाजित किया है इड, इगो, सुपर इगो। इड़ (इदम्) ये मन का वह हिस्सा है जिसका संबंध मनुष्य की वासनाजन्य और इच्छाओं से होता है। ये दरअसल मानव के पाशविक प्रवृत्ति का परिचायक है जो अपने आकांक्षाओं और लालच से प्रेरित होता है। वहीं सुपर इगो (परम अहम्) का संबंध मनुष्य के नैतिक मन से होता है। यह मनुष्य के संस्कार और उनके नैतिक मूल्यों से बनते हैं। इसीलिए ये इदम् द्वारा जनित अनैतिक इच्छाओं को दमित करने का कार्य करता है। इगो(अहम्) इन दोनों का साम्यबिंदु है जो इन दोनों के मध्य लंबे संघर्ष, वाद विवाद और क्रिया प्रतिक्रिया के फलस्वरूप व्यक्त होता है। कभी कभी इदम् और परम अहम् में अधिक द्वंद्व की स्थिति में मनुष्य के अंदर विखंडित व्यक्तित्व का उदाहरण देखने को मिलता है।

मानसिक द्वंद्व की स्थिति :अज्ञेय की कहानियों के स्त्री पात्र मानसिक अंतर्विरोध और द्वंद्व संघर्ष से जूझती हैं। उन्होंने अपनी कहानी 'अमर वल्लरी' में प्रेम की उच्छृंखल से गर्भवती हुई स्त्री को समाज द्वारा परितक्त और प्रवंचना के दारुण व्यथा को उस स्त्री के मनोद्वंद्व के माध्यम से प्रकट किया है ।

"देवता, मैं पहले ही परित्यक्त थी, पर मेरी बुद्धि खो गयी थी! मैं जहाँ गयी, वहीं तिरस्कार पाया; पर फिर भी तुम्हारी शरण छोड़ गयी! मैं कृतघ्ना थी, चली गयी। किस आशा से? प्रेम-धोखा-प्रवंचना! प्रतारणा! उस छली ने मुझे ठग लिया, फिर-फिर देवता, मैं पतिता, भ्रष्टा, कलंकिनी हूँ। मुझे गाँव के लोगों ने मारकर निकाल दिया, अब मैं निर्लज्जा हूँ! अब तुम्हारी शरण आयी हूँ, अकेली नहीं, कलंक के भार से दबी हुई, अपने कोख में कलंक धारण किए हुए!"[3]

उपर्युक्त उद्धरण में सर्वप्रथम वह अमर वल्लरी के सामने आत्मप्रवंचना से भर कर अपने ही निगाहों में गिर जाती है और खुद को बहुत कोसती है । उसे लगता है कि वह ही सर्वथा गलत थी कि उसने सहज प्रेम की कामना की। जो समाज में अस्वीकार्य और दंडनीय है। गाँव से वीभत्स तरीके से मारकर निकाले जाने पर वह अमर वल्लरी से अपने और अपने कोख में पल रहे बच्चे के लिए शरण मांगती है। पंरतु अगले ही क्षण हम देखते हैं कि उस स्त्री की मनोदशा पूर्णतः परिवर्तित हो जाती है। जो उसके मन में चल रहे उधेड़ बुन और द्वंद्व का परिचायक है।

"देवता हो? छली! कितना धोखा, नीचता! प्रेम की बातें करते तुम्हारी जीभ न जल गई! तुम्हारी शरण आऊँगी, तुम्हारी! वह कलंक का टीका नहीं है मेरा पुत्र है! तुम नीच थे, तुमने मुझे अलग कर दिया। वह मेरा है , तुम्हारे पाप से क्यों कलंकित हो गया? तुम देवता हो देवता? मैं तुम्हारी शरण से भाग गई थी। पर वह पाप उसमें तो मेरा भी हाथ था? तुम्हारी शरण में मुझे शांति मिलेगी! मैं ही तो उसके पास गई थी कलंकिनी! पर वह अबोध शिशु तो निर्दोष है, वह क्यों जलेगा? क्यों काला होगा ? देवता तुम बड़े निर्दय हो। उसे छोड़ देना! मैं मरूंगी जलूंगी, पर वह बचकर कहाँ जाएगा! देवता, देवता तुम उसका पोषण करना!"[4]

उपर्युक्त उद्धरण में हम देखते हैं कि स्त्री का अपने पुत्र के प्रति प्रेम और वात्सल्य ने उसे विद्रोही प्रवृत्ति

का बना दिया है। जिस ईश्वर के समक्ष वह अपना सर्वस्व न्यौछावर कर शरण माँग रही थी। दुसरे ही पल में वह अपने निर्दोष, निश्च्छल,और निष्कपट पवित्र प्रेम के प्रतीक (पुत्र) को खो देने के भय से ईश्वर की नियति और अस्तित्व पर प्रश्न करती है तथा ईश्वर की निंदा और भर्त्सना करने लगती है। उसके बाद घोर अंधकार निशा में उसका शरीर शैथिल्य शून्य पड़ जाता है और उसकी प्रेम की सहज आकांक्षा की चाह उन दोनों की आहूति से पूर्ण होती है ।

अजनबीयत और एकाकीपन : अज्ञेय की कहानियाँ एकाकीपन आत्मनिर्वासन और अजनबीयत जैसे समस्याओं को रेखांकित कर स्त्री पात्रों की मनोदशाओं के विभिन्न पहलूओं को विश्लेषित करता है। मनोविज्ञान के अनुसार एकाकीपन आधुनिक युग की ऐसी समस्या है जहाँ व्यक्ति अपनी सहजताओं से कटकर समाज से दूर अकेले अंतर्मुखी जीवन जीने को विवश होता है। जबकि आत्मनिर्वासन इससे थोड़ा भिन्न है जिसमें व्यक्ति को अपना अकेलापन अच्छा लगने लगता है और वह खुद के साथ को उमंग और हर्ष के साथ जीता है। 'हीली बोन की बत्तखें' कहानी में हीली इसी अकेलेपन से जूझ रही है। कैप्टन दयाल द्वारा उसके साफ-सुथरे घर की तारीफ करने पर हीली कहती है। "हाँ कोई कचड़ा फैलाने वाला यहाँ नहीं है, मैं यहाँ अकेली रहती हूँ।"[5] यह कथन ही इस बात का द्योतक है कि हीली अकेलेपन की शिकार है। उसके इसी अकेलेपन को लेकर गांव वाले उसके नारीत्व गुण पर भी प्रश्न खड़े करते हैं। कहानी में एक प्रसंग है जहां लेखक ने हीली के संदर्भ में गाँव वालों की राय व्यक्तकी है। वे कहते हैं "हीली अपने इस घर में ही नहीं बल्कि पूरे गाँव में अकेले रहती है, हीली सुंदर है ,पर स्त्री नहीं, वह बॉबी ही क्या जिसमें साँप नहीं बसता।"[6]

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद : सामाजिक यथार्थ से भिन्न व्यक्ति की अपनी अन्तश्चेतना में निहित मनोदशाओं का भी यथार्थ होता है । हिंदी साहित्य के कथा साहित्य में जहाँ प्रेमचंद, रेणु और नागार्जुन जैसे लेखकों की महता स्थापित है। तो वहीं मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद का प्रत्यावलोकन हिंदी साहित्य में अज्ञेय, जैनेन्द्र, इलाचंद जोशी, यशपाल और मन्नू भंडारी जैसे रचनाकारों ने किया। जो किसी व्यक्ति की अंतरात्मा में झाँककर उसके भीतर चल रहे मानसिक ऊहापोह, द्वंद्व, हीन भावना, कुंठा, अहं भावना, व्यर्थबोधता जैसे आदि मन:स्थितियों का दर्पण सा हूबहू चित्रण कर देते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद पात्रों द्वारा महसूस की जा रही भावनाओं और अनुभूतियों का लेखक द्वारा सहज स्पष्टीकरण है। 'गैंग्रीन' कहानी में मालती का यथास्थितिवादी जीवन शैली एवं जीवन की एकसारता से उत्पन्न पारिवारिक व्यर्थबोधता तथा हीली बोन की बत्तखें कहानी में हीली के अकेलेपन से उत्पन्न अवसादग्रस्त जीवन और लोमड़ी की मृत्यु के पश्चात् बच्चों को कुनमुनाता देख वात्सल्य से भर कर अपने ही बत्तखों की हत्या कर देना आदि सभी घटनाएँ मनोवैज्ञानिक यथार्थ को चित्रित करती है।

माँ की मनोवृत्ति : एक माँ की अपनी संतान के प्रति वात्सल्य की असीम लावण्यता और अपनत्व का मोह ही उसे माँ बनाती है। वह अपने संतान के निमित्त यथार्थ को सौंदर्यपूर्ण बनाने के लिए जन्म से ही उसके अंतर्तम मन में प्रेमांकुर के बीज का सृजन करती है। वह करुणा, प्रेम, वात्सल्य, मोह और ममता का अतिशय भंडार है। अज्ञेय जी ने माँ के इस दिव्य स्वरूप को अपनी कहानी 'पुरुष का भाग्य' में यथोचित स्थान दिया है। जिसमें जेल के कारावास में बंद प्रतिमा नामक स्त्री के अपने पुत्र के प्रति ममत्व की वेदना को अत्यंत ही मार्मिक रूप से वर्णित किया है। जेल में ही पति की मृत्यु एवं पुत्र की प्रसूति के पश्चात् प्रतिमा अपने पुत्र से मन ही मन अनेक सपने और उम्मीदें सँवार लेती है। पुत्र के जन्म के पश्चात् उसे लगने लगता है कि कोल्हू की बैल की तरह एक ही घुरी पर घूमते उसके जीवन को सार्थकता और शक्तिप्राप्त होगी। पंरतु उम्मीद की इस आशा में वह यह भूल जाती है कि समय ने उसके पुत्र को शिशु से पुरुष बना दिया है। एक दिन अचानक जेल का प्रशासन उसके पुत्र को शिशु से पुरुष मानकर उसे अनाथालय को सौंप देगी। क्योंकि उस पुरुष के भाग्य की निर्मिति नियति ने पहले से तय कर रखी है जो उसकी माँ के साथ नहीं अपितु उससे पृथक और भिन्न है। इस दारुण व्यथा को अज्ञेय अपने शब्दों में इस प्रकार कहते हैं- "क्या बच्चे को पता है कि वह अब पुरुष है, कि वह माँ से छिन नहीं रहा, पुरुषत्व को प्राप्त हो रहा है , पुरुष की भाग्य की ओर जा रहा है क्योंकि वह रो नहीं रहा है, एक अपरिचित, अस्पष्ट-

सा अभिमान उसके भीतर भर रहा है कि इन अनेक छोटे बड़े अफसरों के बीच बच्चे की तरह नहीं, उनके परामर्शों का केंद्र बनकर खड़ा है।"[7]

पारिवारिक जीवन की व्यर्थबोधाता : जीवन का नयापन और प्रतिपल परिवर्तनशील नूतन क्रियाएँ ही हमारे जीवन के उमंग और हर्षोल्लास के स्रोत साधन हैं नएपन से रहित और एकसारता भरे जीवन में व्यक्ति अवगुंठन, हीनभावना और कुंठाग्रस्त जीवन जीने को विवश हो जाता है जो उसे परिवार की व्यर्थबोधता तथा जीवन के निरर्थकता का अहसास दिलाता है। अज्ञेय की कहानी 'गैंग्रीन/रोज' इस निरर्थकता का चरमोत्कर्ष है। कहानी की पात्र 'मालती' अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में इतना खो चुकी है कि मानो उसे अपने अस्तित्व की सचेतनता का ही अहसास नहीं है। वह मृत पड़े शव के समान निर्जीव सी व्यवहार करती है जिसके अन्दर जीने की उमंग और उत्साह ही खत्म हो गया हो। मानो वह कोई व्यक्ति नहीं, चलता-फिरता मशीन हो । इस संदर्भ में कथावाचक कहता है - "मैने सुना मालती एक बिलकुल अनैच्छिक, अनुभूतिहीन, नीरस यंत्रवत वह भी थके हुए यंत्र के से स्वर में कह रही है, चार बज गए, मानो इस अनैच्छिक समय को गिनने में ही उसका मशीनी- तुल्य जीवन बीतता हो।"[8]

अहं भावना एवं काम चेतना : अज्ञेय की रचनाओं में अहं(अहंकार) की भावना एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक तत्व के रूप में प्रकट होती है। मनोविज्ञान के संदर्भ में,यह उनके व्यक्तिव्व के भीतर की आत्मचेतना और स्वाधीनता की खोज को प्रकट करती है। अज्ञेय ने 'अहं' को एक सकारात्मक और रचनात्मक दृष्टि से देखा। उनके लिए 'अहं' का अर्थ केवल घमंड नहीं था, बल्कि यह व्यक्ति के आत्मबोध और उसकी पहचान का प्रतीक था। उन्होंने अपनी कहानियों में स्त्रियों के स्वतंत्र अस्तित्व और उनकी चेतना की खोज पर बल दिया। उनका 'अहं' अस्तित्ववादी दर्शन से प्रेरित लगता है, जहाँ व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता, पहचान और जिम्मेदारी का बोध करता है मनोवैज्ञानिक दृष्टि के संदर्भ में, अज्ञेय का 'अहं' फ्रायड के 'इगो' (Ego) के समीप प्रतीत होता है, जो व्यक्ति को उसकी चेतनता और यथार्थ के साथ संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है । वे अपने उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' के पहले भाग में कहते हैं "अविश्वसनीय होने से कुत्ता चूहा, दुर्गन्धित कृमि-कीट होना अच्छा है।"[9] जो एक प्रकार से इनकी अहं भावना की ही अतिशयोक्ति है। सिग्मंड फ्रायड के मनोवैज्ञानक सिद्धांत के अनुसार मनुष्य जन्म से ही तीन सहजात प्रवृत्तियों द्वारा परिचालित होता है अहं, भय और काम चेतना (अंतरंग क्रिया)। अज्ञेय भी इनकी काम चेतना (लिबिडो) के सिद्धांत से प्रभावित थे। इन्होंने अपने उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' में इस पक्ष पर शेखर और शशि के अंतरंग संबंधों को लेकर खुलकर लिखा है। साथ ही शेखर का अपने पिता से छुपकर जयदेव की रचना 'गीत गोविंद' पढ़ना और शेखर का शारदा के प्रति प्रेम और कामुकता भरा आकर्षण अज्ञेय पर लिबिडो सिद्धांत के प्रभाव की पुष्टि करता है। इन तीनों ही प्रवृत्तियों के संदर्भ में डॉ. सत्यपाल सिंह जी कहते हैं -"उस लेटरबॉक्स पर बैठकर दूसरों के पांव को कुचलते हुए मानो विजेता बनकर भाग खड़ा होना उसका अहं को व्यक्त करता है, अजायबघर के नकली भाग से डरकर भागना, भय की प्रेरणा को निर्देशित करता है और किसी अनुचित वर्जित दृश्य को देखकर वैसे ही भावना का अनुभव करना उसकी काम प्रेरणा को प्रदर्शित करता है ।"[10]

हीन भावना और कुंठाग्रस्त जीवन : हीन भावना (Inferiority Complex) एक मानसिक स्थिति को दर्शाती है जिसमें व्यक्ति अपने आप को दूसरों से कमतर या अधूरा महसूस करता है। इस भावना के कारण किसी व्यक्ति के आत्म-सम्मान की कमी, व्यक्तिगत असफलताएँ या दूसरों के साथ तुलना हो सकते हैं। व्यक्ति को लगता है कि वह किसी विशिष्ट पहलू में दूसरों से कम है, चाहे वह शारीरिक, मानसिक या सामाजिक हो। यह स्थिति आत्मविश्वास की कमी, चिंता, अवसाद, या अन्य नकारात्मक भावनाओं को जन्म दे सकती है। अल्फ्रेड एडलर (Alfred Adler) ने इसे हीनता का अनुभव के रूप में परिभाषित किया था। वहीं कुंठाग्रस्त जीवन शैली (Frustrated lifestyle) मनोविज्ञान में एक ऐसी स्थिति को संदर्भित करती है जिसमें व्यक्ति अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं या उद्देश्यों को पूरा करने में असमर्थ होता है। इसे मानसिक और भावनात्मक तनाव के रूप में देखा जाता है, जिससे व्यक्तिकी जीवनशैली प्रभावित होती है। कुंठा एक ऐसी मानसिक स्थिति है जो तब

उत्पन्न होती है जब किसी व्यक्तिको अपने इच्छित परिणाम या लक्ष्य प्राप्त करने में अवरोधों का सामना करना पड़ता है। अज्ञेय की कहानी गैंग्रीन/रोज में मालती नामक स्त्री पात्र इन्हीं दोनों कुत्सित भावनाओं की शिकार है। जीवन की नीरसता ने उसे कठोर, चिड़चिड़ा और दुनिया के प्रति बेपरवाह बना दिया है । वह इस तरह के कुंठाग्रस्त जीवन शैली में इतना अभ्यस्त हो चुकी है कि उसे लोगों की मृत्यु से भी फर्क नहीं पड़ता। मालती इस संदर्भ में कथावाचक से कहती है - "मैं तो रोज ही ऐसी बातें सुनती हूँ! अब कोई मर-मुर जाए तो ख़याल ही नहीं होता । पहले तो रात-रात भर नींद नहीं आया करती थी।"[11]

नव्य चेतना से युक्त विद्रोही स्त्री : आधुनिक चेतना से युक्तविद्रोही स्त्री पात्र साहित्य और कला में परंपरागत समाज द्वारा तय की गई सीमाओं को चुनौती देने वाली महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये पात्र उन मूल्यों और रूढ़ियों के खिलाफ खड़े होते हैं जो उन्हें केवल पालनकर्ता, समर्पिता या मर्यादित भूमिकाओं में सीमित कर देते हैं। अज्ञेय की कहानियों में कुछ स्त्री पात्र ऐसे हैं जो आधुनिक चेतना से युक्त सशक्त नारी हैं उदाहरण स्वरूप 'कविप्रिया' कहानी की स्त्री चरित्र, शांता, मालती और सुधा तथा 'विपथगा' कहानी की पात्र 'मेरिया इवानोवना'। मेरिया आधुनिक विचारों वाली क्रांतिकारी स्त्री है जो लेनिन के विचारों से प्रभावित है और रूस में साम्यवाद स्थापित करना चाहती है। उसका मानना है कि संसार के संसाधनों पर सभी का बराबर अधिकार है, परन्तु कुछ सत्ताधारी लोग (बुर्जुआ) इन संसाधनों को समाज के कमजोर वर्गों (सर्वहारा) से छिनकर अपने हितों के लिए प्रयोग में लाते हैं। वह कहती है - "दीप बुझता है तो धुआँ उठता है। किंतु जब हमारे विस्तृत देश के भूखे पीड़ित, अनाश्रित कृषक कुटुम्ब सड़कों पर भटक भटककर हेमावृत धरती पर बैठकर अपने भाग्य को कोसने लगते हैं किंतु किसी दिन, सुदूर भविष्य में किसी घोर झंझ से उसमें फिर चिंगारी निकलेगी! उसकी ज्वाला - घोरतम, अनवरूद्ध, प्रदीप्त ज्वाला! किधर फैलेगी, किसको भस्म करेगी,किन नगरों और प्रांतों का मन मर्दन करेगी कौन जाने?"[12]

संदर्भ ग्रन्थ :

1. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन,तार सप्तक (भूमिका),भारतीय ज्ञानपीठ, वाणी प्रकाशन, 2023,दरियागंज, नई दिल्ली
2. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन,दूसरा सप्तक, कविता-गुनाह का दूसरा गीत ,रचनाकार-धर्मवीर भारती,भारतीय ज्ञानपीठ, 2012,दरियागंज ,नई दिल्ली,पृष्ठ संख्या (166)
3. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन,अज्ञेय रचनावली खंड:तीन ,अज्ञेय की संपूर्ण कहानियां, कहानी अमर वल्लरी, संपादक-पालीवाल, कृष्णदत्त, भारतीय ज्ञानपीठ ,प्रथम संस्करण- 2011, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या (56)
4. वहीं, पृष्ठ संख्या (57)
5. वहीं, कहानी-हीली बोन की बत्तखें, पृष्ठ संख्या (621)
6. वहीं, पृष्ठ संख्या (623)
7. वहीं, कहानी-पुरुष का भाग्य, पृष्ठ संख्या (548)
8. वहीं, कहानी-गैंग्रीन/रोज, पृष्ठ संख्या (253)
9. अज्ञेय,सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन, शेखर एक जीवनी :भाग-1 (1941), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2001, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या (166)
10. मिश्र ,डॉ. दुर्गाशंकर , अज्ञेय का उपन्यास साहित्य, विद्यामंदिर,2005, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या (277)
11. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन, अज्ञेय रचनावली खंड:तीन, अज्ञेय की संपूर्ण कहानियां, कहानी-गैंग्रीन/रोज , संपादक- पालीवाल कृष्णदत्त , भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण, 2011, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या (254)
12. वहीं, कहानी-विपथगा, पृष्ठ संख्या (119)

शोधार्थी, हिंदी विभाग
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय,
धर्मशाला - 176215,
धौलाधार परिसर–1

चंद्रकांत देवताले की कविता में राजनीतिक चेतना

स्मिता जे एम

कवि देवताले ने अपनी रचना में समाज यथार्थ, आर्थिक विषमता, राजनैतिक भ्रष्टाचार आदि का खुला चित्रण किया है। आम आदमी इनकी कविता का केंद्र बिन्दु है। इनकी कविता में सामाजिकता एवं राष्ट्रियता का भाव प्रखर है। आधुनिक मनुष्य की समस्यायें, उसकी विवशता और त्रासदी आदि का सम्पूर्ण वर्णन उसने कविता में किया है।

सन 1960 के समय भारत कठिन राजनीतिक परिस्थितियों से गुजर रहा था। 1962 में भारत - चीन युद्ध, 1964 में पं नेहरू का निधन, 1965 में भारत पर पाकिस्तान का आक्रमण, 1967 में आम चुनाव में कांग्रेस की हार, 26 जून 1975 को आपातकाल की घोषणा आदि परिस्थितियों ने आम जनता में मोहभंग और निराशा पैदा किया था। कवि देवताले का मन विक्षुब्ध और आक्रोश की भावना से मुखरित है। देवताले ने अपने समय की विसंगति को गहराई से महसूस किया तथा कविताओं में स्थापित किया है।

दमन नीतियों का पर्दाफाश

"तरतीब के नाम पर कविता में देवताले सरकार की दमन नीतियों का पर्दाफाश करते हुए कहते हैं और वह आदमी / जो रास्ता देखते देखते कभी का /बेहोश हो गया था/जिसे देखने एक नहीं /बीसों महामहिम दौड़े थे/पर तब तक वह / अस्थिपंजर में बदलकर /फहराते हुए झंडे के पीछे /गायब हो गया था...../ सिर्फ राष्ट्रगीत की धुन पीछे बची थी /और सावधान की मुद्रा में कुछ लोग / दर्पभरे मुस्करा रहे थे।"[1]

कहने का तात्पर्य है जो देश के लिए अपना जीवन समर्पित किया उनके सपने टूट गये। जो व्यक्ती सचमुच समाज के लिए खड़ा है उसकी तरफ सरकार कभी नहीं देखते और उसे रास्ते से हटाने के लिए स्वार्थी सरकार कुछ भी करने को तैयार है। इसके प्रति आक्रोश कवि के शब्दों में प्रकट है।

देवताले ने आम आदमी की तकलीफ को गहराई में अनुभव किया और उनके शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाया। चिथड़ा जवाब कविता में देवताले राजनेताओं का काला चिट्ठा खोलते हुए लिखते हैं - "उधर जूते की जख्मी सांसों को/कस्बे के अस्पताल में सुनाई जा रही थी /कठोर कारावास की सजा ..../भिनभिनाती हुई मक्खियों के बीच /फंसे हुए हत्यारे / आरामगाहों में उस वक्त देख रहे थे /सिंहासनों के सपने..."[2]

प्रस्तुत पंक्तियों में आपातकाल के समय आंदोलन में भाग लिए किसानों और जनता पर सरकार द्वारा शोषण का चित्रण किया है ।

उनकी 'वध' कविता में राजनीति के द्वारा जनता पर किए गये अत्याचारों का उल्लेख है वहीं सत्ता की पोल भी खोल दी है - "हजारों ढंग है /हमारा वध करने के लिए / आईने के भीतर रखी हुई स्मृतियाँ/और दिमाग के नजदीक बंद होती हुई खिड़की/या /कोई भी औरत जिसकी नदी में / एक से ज़्यादा नावें चलनी हों/और जो आहिस्ता भी हँसे तो /भीतर कि हड्डियाँ तड़कने लग जाएँ ....।"[3]

कहने का तात्पर्य है सत्ता हजारों ढंग से जनता की हत्या करती है। यहाँ भ्रष्ट राजनीति पर कवि ने तीखा व्यंग्य किया है। कवि देवताले जनता को जागृत करने के प्रयास में निरंतर संवेगात्मक उतार-चढ़ाव से गुजरते है । इनकी कविता 'पोलियोग्रस्त बच्चे की सवारी' में राजनीति में जनता को मोहरे की तरह इस्तेमाल किए जाने के कारण कवि उद्विग्न हो उठते है- "मैं भड्भूंजे की तरह /इन शब्दों को कब तक फोड़ता रहूँगा, मस्तिष्क के/भीतर मृत मछलियों को अबेरते हुए नदी के/चढ़ते बुखार को कब तक अपनी हड्डियों के/थर्मामीटर में चुपचाप पढ़ता रहूँगा।"[4]

भ्रष्ट राजनीतिज्ञों पर प्रहार

सरकार ने गरीबों के लिए योजनाएँ तो बनाई पर उसका लाभ उन तक नहीं पहुँच सका। 'चीते को जुकाम होने से', 'चोंच से पड़े उगाती चिड़िया' जैसी कविताओं में कवि का आक्रोश व्यक्त है।

'हैरत से मर जाना' कविता आम आदमी की पीड़ा को व्यक्त करती है । मध्यवर्ग का व्यक्ति महंगाई से जूझ रहे है। महंगाई की गोली से आम जनता मरती जा रही है गरीबों तक राशन पहुँच नहीं पाता देवताले की शब्दों में-"मैंने सोचा/ जब मुझे गोली मार ही दी गई है /तो मैं क्यों परवाह करूं वर्षों की /राशन कार्ड में छिपी चीजों की/एक कतार सबसे बड़े पहाड़ से शुरू होकर/सबड़े बड़े समुद्र में गिर रही है /फिर भी चेहरा नहीं दिखाती /घर और पेट के लिए जरूरी चीजें।"[5] कहने का तात्पर्य है वर्तमान राजनीति ने भूखमरी, गरीबी को और बढ़ा दिया है।

देवताले व्यवस्था और राजनीति के विरुद्ध खड़े होकर विसंगतियों से लड़ते हैं। लोगों का विश्वास पुलिस से उठ गया था। आम आदमी सबसे अधिक पुलिसवालों से खौफ खाता है, भयभीत रहता है और उस समय राजनेता कमांडो सुरक्षा में हवाई जहाज़ में सफर करते हैं - "जहाँ हमारे सुख चैन की रखवाली खूंखार दैत्य करते हैं/और उधर आकाश में उड़ते रहते है हमारी भलाई के लिए/छोटी बड़ी राजधानी वाले खास लोग पुख्ता सुरक्षा/दस्तों से घिरे हुए।"[6]

देवताले ने 'फिलवक्त इतना ही' कविता में राजनीति के विरुद्ध खडा होकर क्रांति का आह्वान करते है - "तुम्हारे भीतर अभिनेता/उसके मुंह में भाषण की भीषण भाषा/ सामने भेड़ बकरियाँ जंगल /जीवाश्म कानून कायदों के/ भूख और भैंस की परछाइयाँ/लाठीयाँ, गदाएँ, त्रिशूल तुम्हारे हाथ में/और सच्चाई का तुम्हारे ही द्वारा निर्मित उजाड़ /इसी में रहो खाओ करो कीर्तन/जय जयकार में जनता की नहाते /कहो अपने को जनार्दन"[7] इन पंक्तियों के द्वारा देवताले सुविधाभोगी राजनेताओं को खबरदार करते हुए सावधान करते है कि उनकी नकली या बनावटी चरित्र को कभी न कभी जनता के आक्रोश को सामना करना पड़ेगा।

'पत्थर फेंक रहा हूँ' कविता में देवताले राजनीति दृष्टिगत करते हुए बहुत मार्मिक स्थल पर चोट करते है - "बाघों को देखने गये हमारे दयालु प्रधानमंत्री/इधर नहीं आये झाबुआ -धार के इलाका में/जो आदिवासी बच्चों के नसीब में होना होता बाघ-बच्चों जैसा/तो इनका भी नंबर आता।"[8]

कहने का तात्पर्य है प्रधानमंत्री दयालु तस्वीर दिखाते हुए बाघों को देखने जाते है लेकिन गरीब आदिवासी बच्चे जो देश के कोने कोने में भूखे ,नंगे ,मजदूरी कर रहे है। इसके लिए योजनाएँ बनाई जाती हैं लेकिन क्या ये योजनाएँ वास्तव में इन तक पहुँचती है -इसपर कोई विचार नहीं करते।

सरकार की ज़िम्मेदारी होती है कि वह लोगों के दुखों को समझे और उन्हें दूर करने का प्रयास करें। लेकिन सत्ता की कुर्सियाँ बदलने पर तथा वहाँ नए लोगों के बैठने पर भी कोई फर्क नहीं पड़ता। उनकी इस षड्यंत्रकारी असंवेदनाशीलता को कवि ने ऐसे खोलकर रखा है।

"आग पालतू जानवरों की तरह/कब तक घास खाती रहेगी/वह पक्षी बनकर आकाश में क्यों नहीं उड़ती /वह बाज बन कर क्यों नहीं टूटती/दरिंदों दरवाजों पर /ऊँची कुरसियों पर पुरानी और नई/जो सिर्फ कुरसियाँ हैं /और आदमी की हसरत को कभी नहीं पहचानती।"[9]

राजनेताओं के अत्याचार के विरु द्ध आवाज़ उठाने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं - "जिसे सड़क से उठा सिंहासन पर बिठाया तुमने/और बदले में जिसने/दुस्वप्नों के जंगली कुत्तों को छोड़ा तुम्हारी नींद में/वही दयालु प्रभु/आ रहा है फाँसी घर का शिलान्यास करने/जय दुंदुभी बजाने में कोई कसर नहीं रहे/सताए हुए लोगों /तुम्हारी सहिष्णुता सदियों चर्चित रहेगी इतिहास में।"[10]

राजनीतिज्ञों पर तीखा व्यंग्य : कवि ने 'खुद पर निगरानी का वक्त' काव्य संग्रह में झूठे और मक्कारी से पदों पर आसीन होकर देश का शोषण करनेवाले और खुद को देशप्रेमी बतानेवाले राजनेताओं पर तीखा व्यंग्य किया है। वह खुद को आम जनता के एक अंग के नाते अपनी समस्याएँ पाठकों से बाँटने का प्रयास की है । कवि लिखता है - "रघुवीर जी और मुक्तिबोध ने भय और खतरे के बारे में/जो कहा सुन तो रहा हूँ आधी सदी से /पर किसे बताउँ इन दिनों /नष्ट हो रहा है साहस का भीतरी कारख़ाना / क्योंकि झूठ का परचम फहराते पूरे देश में मंडरा रहे है फर्जी/देश प्रेमियों के दस्ते/और सम्मानित हो रहे जगह जगह/अपनी राजा वत्सल प्रजा द्वारा।"[11]

गांवों में आज भी आज़ादी के इतने सालों के बाद न तो कोई सुविधा है न साधन। देश के जो भाग्यविधाता केवल

अपने स्वार्थ सीधा करने में लगे रहते हैं। देवतले ने 'कटीगांव' नामक कविता में गाँव का चित्रण किया है - "जो होता बाढ़ -भूकंभ जैसा इलाका कोई/तो आते पुष्पक विमानों से राहत की पोटली /टपका जाते भाग्य विधाता/ पर मुद्दत हुई कटीगांव में दर्शन देने/नहीं आया है अन्न का एक भी दाना।"[12]

समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के खिलाफ देवताले के पास विद्रोह और आक्रोश का स्वर है। 'दीवारों पर खून से' में कवि का विद्रोह और आक्रोश साफ ज़ाहिर हुआ है। कवि ने इस काव्यसंग्रह में राजनीति और राजनीति में होनेवाली भ्रष्टाचारों का चित्रण किया है। राजनीति की गंदी व्यवस्था पर कवि तीखा व्यंग्य करते हैं। 'कवितान्त के अंधेरे में' एक ऐसी कविता है जो देश, काल और राजनीति के भ्रष्टाचार को उजागर करती है।

"खून के गाढ़े चकत्ततों के भीतर/धंस कर सह रही है/ जो ज़हरीली सदी/उसके लिए ज़िम्मेदार है /आदमी की खाल में /गधे और भेड़िए का /आधा आधा भेजा लिए / घूमते राजनीति के झंडाबरदार"[13]

कवि के अनुसार ज़हरीली सदी और राजनीति के लिए जो ज़िम्मेदार है उनकी खाल में आधा भेजा गधे का और आधा भेजा भेड़िए का है। हमारे देश की शासन व्यवस्था लोगों के हाथ में है।लोगों द्वारा चुने हुए लोग ही आदमी की खाल को उखाड़ते घूमते हैं। मनुष्य की यह नियति बन गई है कि ऐसे भ्रष्ट लोगों के शोषण के शिकार रहें। यहाँ कवि ने अपने आक्रोश को कवितान्त, कवितान्त कहकर उगल दिया है।

राजनीति के लोगों की चालाक भाषा को कवि 'खिलाफत के विरुद्ध' नामक कविता में चित्रित करते हैं- "हमें उन अफवाहों को/भाषा की तरह उड़ाना है/जो शांति और व्यवस्था की काँख से /निकलकर/एक सुनहरी यात्रा का संसार सौंपते हुए /चालक भाषा के भीतर/दरवाज़े/खोलती है।"[14]

कवि के अनुसार राजनीतिज्ञ तरह तरह की लचीली भाषा का इस्तेमाल कर आम जनता को फँसाते हैं ,चुनाव जीतने के लिए तरह तरह की कपात धारणाएँ फैलाते है। 'पत्थर की बेंच' काव्य संग्रह में भी कपट राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य किया है। 'सहानुभूति जतानेवाले' नामक कविता इसका उदाहरण है। देवताले ने शासक वर्गों और पदाधिकारियों के बीच के अनैतिक संबंधों का पर्दाफाश किया है। 'इनकमटैक्स आफीसट', 'हाइपवर नंगे बस्तर को कपड़े पहनायेगा', 'मृत्यु-मुआवजा आयोग के अध्यक्ष' जैसी कविताएँ उदाहरण हैं। कवि ने राजनीति की चालाकी में फँसी आम जनता के भोलेपन को स्पष्ट वर्णन किया है। 'उजाड़ में संग्रहालय, पंद्रह अगस्त , राष्ट्रीय पशुओं के बारे में, यहाँ अश्वमेध -यज्ञ हो रहा है' जैसी कविताएँ इसका जीवंत उदाहरण हैं ।

आज़ादी के संग्राम में जनता सुंदर सपने देखते थे। लेकिन वे साकार नहीं हुए। राष्ट्रीय पशुओं के बारे में कविता में कवि सत्ता,चालाकी सत्ताधारियों को जंगली जानवरों से तुलना करते हैं। कवि के अनुसार जंगली पाशों से इनका उदाहरण करना कविता के लिए और जंगली जानवरों के लिए शोभा नहीं देते- "रीछ ही कहलाएगा सर्वेसर्वा हाट के करतब में/मदारी रीछ को दंडवत करवाता/ जबकि पेड़ पर सीधा नहीं चढ़ सकता रीछ कभी /फायदा उठाती इसका लोमड़ी चालाक इतनी/नए जमाने की /खट्टे अंगूर नहीं होते उसको ,मीठे सब /रीछ की पीठ के सहारे मुट्ठी में उसकी।"[15]

कवि ने सत्ताधारियों और उनके दलालों के कुचक्रों ,चालाकियों व कपटताओं को जोरदार भाषा में अभिव्यक्ति दी है । इसका उदाहरण है 'यहाँ अश्वमेध यज्ञ हो रहा है' शीर्षक कविता। इसी प्रकार 'सिकंदर पुराण' कविता भी समकालीन भ्रष्टनेताओं की चालाकियों को अभिव्यक्ति देती है। पुराने ज़माने के सिकंदर आज के राजनीतिज्ञों जैसा उतना चालक नहीं था।

"शायद यही कि यह आदमी सातवाँ सिकंदर नहीं है/ और ऐसा आदमी जब हाथी के हौदे पर बैठता है/तो वह घोड़ों से जनता का नसीब ठुकवाता है।"[16]

उनकी 'आग हर चीज़ में छिपाई गई थी' काव्य संग्रह में भी तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था की झलक देखने को मिलती है 1970 में इन्दिरा गांधी सरकार के विरुद्ध माहौल था। आम जनता के गुस्से को इसमें चित्रित की गयी है। 'सवाल- जवाब' नाम की लंबी कविता में विधानसभा

एवं संसद में पूछे गए प्रश्नों को दिए गए उत्तरों पर कवि ने व्यंग्य किया है- "करोड़ों लोगों के सपनों की ऐसी -तैसी में/डंडा करते रहते हैं कब तक देखते रहोगे करोड़ों लोगों/ इस भद्दे नाटक को /इसका पर्दा आप से आप गिरनेवाला नहीं /साथियों /मंच सहित उखाड़ना होगा/इस ताम -झाम कंपनी को।"[17]

हमारी पुलिस-व्यवस्था, न्याय व्यवस्था , प्रमाणों , कागजों, गवाहों पर विश्वास करती है। कुछ हत्यारों को हर बार छोड़ दिया जाता है। क्यों की उनके खिलाफ कोई गवाही देने के लिए तैयार है। सत्ता के कई साल मिलने बाद भी कुछ इलाकों में राजनीतिज्ञों का बिलकुल ध्यान नहीं होता। बिजली,पानी और रास्ते तक नहीं बनते। पाठशाला भी नहीं होते। कवि के अनुसार प्रधानमंत्री को ऐसे इलाकों का दौरा करना चाहिए क्योंकि जहाँ प्रधानमंत्री जैसे बड़े व्यक्तियों का दौरा होता हैं वहाँ बिजली,पानी और रास्ता फटाक से बनाए जाते हैं। कवि के शब्दों में - "पंत प्रधान मनमोहन जी जल्दी बुलाओ मैडम राईस को/दिखाओ झांकी कटीगांव और ऐसे लाखों गांवों की/हाँ। जायका इंडिया का बनानेवाले/शहर दर शहर जाकर देश के वास्ते/ ठूँस ठूँस कर भकोसते पेटु भैया को इधर मत आने देना / ले लेगा मुंह में गलती से जो निवाला एक भी /बेहोश हो जाएगा।"[18]

कवि के मतानुसार कांटी गाँव जैसे गांवों का दौरा प्रधानमंत्री करने लगे तो कांटीगांव की सारी मुश्किलें हल हो जाएँगी। कवि यहाँ उन राजनेताओं पर निशाना साध रहे है जो 15 सालों तक मंत्री बने रहने के बाद कांटीगांव जैसे गाँवों के लिए कुछ भी नहीं किया इससे भ्रष्ट राजनीतिज्ञों पर कवि टीका टिप्पणी करते है।

संक्षेप में देवताले ने अपनी कविताओं में राजनीतिक विसंगतियों, अधिकारों के दुरुपयोग और शोषण का इतना गहरा वर्णन किया है कि वह पूर्णतः राजनीति के प्रति विद्रोही हो गया। एक और बढते सामाजिक विघटन, घोर सांप्रदायिकता, स्त्री उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज़ उठाना और दूसरी और वैश्वीकरण और उदारीकरण के नाम पर आ रही नई आर्थिक गुलामी और व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करने का प्रयास किया है। अपनी कविताओं द्वारा अवसरवाद, पतनशीलता, भ्रष्टाचार, गद्दारी, फूटपरस्ती और मक्कारी का खुला चित्रण किया है। अपने देश और देशवासियों के प्रति उनका राष्ट्रीय चेतना उनकी कविताओं में द्रष्टव्य है।

संदर्भ ग्रंथ

1. चन्द्रकान्त देवताले :दीवारों पर खून से, पृ.31
2. आशा सिंह सिकरवारः समकालीन कविता के परिप्रेक्ष्य में चंद्रकांत देवताले की कविताएँ, पृ -290
3 चन्द्रकान्त देवताले :दीवारों पर खून से , पृ.39 .
4. चन्द्रकान्त देवताले :दीवारों पर खून से , पृ.87
5. चन्द्रकान्त देवताले :आग हर चीज़ में बताई गई थी , पृ.53
6 चन्द्रकान्त देवताले : पत्थर फेंक रहा हूं , पृ.133
7 वही, पृ.139
8 वही, पृ.155
9 वही, पृ.33
10 वही, पृ.64
11 चन्द्रकान्त देवतालेः खुद पर निगरानी का वक्त वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,प्रथम संस्करण 2015, पृ.28
12. चन्द्रकान्त देवतालेः खुद पर निगरानी का वक्त वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली,प्रथम संस्करण 2015, पृ.73
13. चन्द्रकान्त देवताले :दीवारों पर खून से, पृ.12
14. वही, पृ.14
15. चन्द्रकान्त देवताले : राष्ट्रीय पशुओं के बारे में, उजाड़ में संग्रहालय, पृ.48
16. चन्द्रकान्त देवताले : उजाड़ में संग्रहालय , पृ.72
17. चन्द्रकान्त देवताले की कविता:सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य, डॉ.हंबीरराव मारु ती चौगले, पृ.61
18 इधर मत आना ...यह कांटीगाँव है, पृ 74

शोध निर्देशिका : डॉ सुधा ए एस

शोधार्थी, यूनिवेर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

हिंदी की स्त्री आत्मकथाओं में आर्थिक स्वतंत्रता का सवाल

शिल्पा सुरेष पुल्लाट्टु

हिंदू जीवन दर्शन ने मानव जीवन के चार मूल्य स्वीकार किए हैं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । मोक्ष को जीवन का साध्यात्मक मूल्य तथा धर्म, अर्थ एवं काम को साधनात्मक मूल्य के रूप में मान्यता दी है। अर्थ को मानव जीवन में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। अर्थ मनुष्य को आत्मसम्मान तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करा देता है। प्रसिद्ध विचारवंत जिम्मर ने अर्थ की परिभाषा इस प्रकार दी है- "इसके (अर्थ) अंतर्गत उन सभी भौतिक वस्तुओं की संपूर्ण शृंखला का समावेश है जिनपर अधिकार किया जा सकता है, जिनका आनंद लिया जा सकता है और जो खोई जा सकती है एवं दैनिक जीवन में घर के प्रबंध, भरण-पोषण, परिवार की समृद्धि तथा धार्मिक कर्तव्यों के पालन अर्थात जीवन के विभिन्न उत्तरदायित्व को पूर्ण करने में जिनकी आवश्यकता होती है।"[1]

नारी को अपनी इच्छानुसार सफल जीवन जीना है तो उसे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना बहुत जरूरी है। अर्थ ही वह शक्ति है जिसके बल पर स्त्री अपना जीवन खुशहाल बना लेती है। पितृसत्तात्मक समाज महिलाओं के आर्थिक निर्णयों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है, अक्सर उनकी पसंद और स्वायत्तता को सीमित कर देता है। आत्मकथाएँ बताती हैं कि कैसे महिलाएँ अपने आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए लैंगिक भूमिकाओं और अपेक्षाओं को चुनौती देते हुए इन बाधाओं को पार करती है। इस संदर्भ में डॉ रणभीरकर कहते हैं- "स्त्री के इर्दगिर्द एक मायाजाल बुन दिया जिसके बाहर झांकने का प्रयास बहुत कम स्त्रियों की ओर से हुआ। पुरुष ने अपने शब्दों के स्वप्निल वाक्यजाल से नारी को शिखर तक पहुँचा तो दिया, किंतु उसकी आह और वेदना पर बड़ी चतुराई से पर्दा डाल दिया।"[2]

आत्मकथाएँ महिलाओं के लिए अपने आर्थिक आकांक्षाओं को व्यक्त करने का एक सशक्तमाध्यम है। हिंदी महिला लेखिकाओं की आत्मकथाएँ अक्सर उनके आर्थिक संघर्षों की एक स्पष्ट झलक पेश करती हैं, उन सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं पर प्रकाश डालती है, जो उनकी आर्थिक स्वतंत्रता में बाधा बनती हैं। अपने व्यक्तिगत आख्यानों के माध्यम से, ये महिलाएँ लचीलेपन और दृढ़ संकल्प की कहानियाँ साझा करती हैं, और उन तरीकों पर प्रकाश डालती हैं जिनसे उन्होंने आर्थिक स्थिरता हासिल करने के लिए पितृसत्तात्मक मानदंडों, शिक्षा और संसाधनों तक सीमित पहुँच और अन्य बाधाओं को पार किया।

प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में आर्थिक स्थिरता का चित्रण किया है। प्रभा खेतान नारी के लिए आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने को महत्त्व देती है। पाँच बच्चों वाले अधेड़ उम्र के विवाहित पुरुष डॉक्टर सर्राफ के प्रेम में पागल बनी प्रभा उम्र भर अविवाहित रहती है। ऐसी अवस्था में वह अपनी आर्थिक निर्भरता के महत्त्व को पहचानकर व्यापार में कदम रखती है। आर्थिक स्वावलंबन की दिशा में प्रभा जी का पहला कदम हेल्थ क्लब फ़िगरेट रहा है। उसके बाद वह चमड़े से बनी वस्तुओं का निर्यात करने का व्यवसाय करती है - "व्यापार की दुनिया की अपनी अपेक्षाएँ थी, जिन पर खरा उतरना एक नारी के लिए आसान न था। फ़िरंगी डांस करने के लिए उकसाते थे, विदा होते समय गाल पर किस करते थे।"[3] स्त्री को आर्थिक सबलीकरण केलिए क्या क्या सहना पडता था, इसकी एक छोटी सी झलक वे पेश करती है । इस तरह की घटनाओं के बावजूद,आर्थिक आत्मनिर्भरता प्रभा के जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है। डॉ सर्राफ की जिंदगी में 'अन्या' की हैसियत से प्रवेश करनेवाली प्रभा व्यापार की दुनिया में सुदृढ़ आर्थिक आधार से पूरे समाज में अनन्य हो गयी।

नारीवादी लेखिका सिमोन द बोउवार अर्थ की स्वतंत्रता को ही सही स्वतंत्रता मानती है। वे कहती हैं कि - "मतदान और अन्य तमाम अधिकारों के बावजूद आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में स्त्री की स्वतंत्रता अमूर्त और सैद्धांतिक रह जाती है।"[4] नारी का आत्मनिर्भर न होना, नारी शोषण का प्रमुख कारण है, इसलिए प्रत्येक नारी को वे आत्मनिर्भर होने का मूल मंत्र देते हुए कहती हैं - "औरतों की सारी स्वतंत्रता उसके पर्स में निहित है।"[5]

कौशल्या बैसंत्री को आर्थिक स्वातंत्र्य नहीं थी । उन्होंने कभी नौकरी नहीं की । उन्हें प्रत्येक वस्तु के लिए

अपने पति के सामने हाथ फैलाने पड़ते थे । उनके पति देवेन्द्रकुमार, दूध और सब्जी के पैसे भी गिनकर देते थे। पैसे अलमारी में बंद रखते थे। बहुत बार छोटी - छोटी वस्तुओं के लिए उन्हें तरसना पड़ता था। उनका कहना था कि "मेरे कपड़े, चप्पल की सिलाई के लिए पैसे लेने में बहुत पीछे पड़ना पडता था , तब पैसे देता था। वे भी पूरे नहीं पड़ते थे। कभी नहीं भी देता था। कहता था अगले महीने लेना। जब अगले महीने पैसे देने की बात आती तब कुछ न कुछ कारण निकालकर झगड़ा करता, मारने दौड़ता।"[6] इससे स्पष्ट होता है कि कौशल्या ने भी आर्थिक अधिकार को महत्त्व दिया है। वह कहती है कि- "अगर हम स्वाभिमान से अपनी उन्नति करना चाहते हैं तो हमें अपने पाँवों पर खड़ा होकर , अपने पर भरोसा रखकर, आगे बढ़ना होगा। हमें अपने अंदर शक्ति पैदा करनी होगी। किसी का सहारा लेकर चलने से काम नहीं बनेगा।"[7]

आर्थिक स्वावलंबन का अभाव स्त्री को अपनी आर्थिक ज़रूरतों के लिए दूसरे के आश्रय में रहने के लिए विवश करता है। इस स्थिति के कारण स्त्री को अपने जीवन के निर्णय लेने में दिक्कत आती है और समाज में उसे असमानता का सामना करना पड़ता है। आर्थिक रूप से निर्भर न होने की स्थिति उसके शोषण का कारण बनती है। नारी जीवन में आर्थिक आत्मनिर्भरता उसकी अस्मिता की रक्षा करती है। नारी शोषण का प्रमुख कारण आर्थिक विपन्नता है। 'अन्या से अनन्या' की डॉ सर्राफ की पत्नी, डॉ सर्राफ और प्रभा खेतान के अनैतिक यौन संबंधों से भी परिचित हैं, किंतु चाहकर भी वह डॉ सर्राफ का विरोध नहीं कर पाती। डॉ सर्राफ एक सफल नेत्र विशेषज्ञ के रूप में बहुत पैसे कमाते हैं। वह पत्नी के अलावा प्रेमिका भी रखते हैं। पत्नी उन्हें तलाक देने का साहस नहीं रखती क्योंकि वह अर्थ के लिए उनपर निर्भर है और आर्थिक विपन्नता उसे चुप रहने के लिए मजबूर कर रही है।

आर्थिक विपन्नता में नरकीय वेदना सहनेवाली 'कस्तूरी कुंडल बसै' की कस्तूरी का मैत्रेयी पुष्पा ने सजीव चित्रण किया है। अंग्रेजी राज़ और ज़मींदारी प्रथा, लगान की वसुली में नादिरशाही अत्याचार , पिटाई और कुर्की के माहौल में छोटी कस्तूरी ने घर की दो कलशियाँ बनिए के यहाँ बेचकर आठ आने प्राप्त किये तो घर की नीलामी से बचाव हुआ। बढ़ती उम्र की लड़की के बोझ को न सह सकने के कारण आठ सौ रुपए लेकर उसकी शादी एक बूढे के साथ कर दी गयी थी। इस सामाजिक शोषण एवं अपमान से बचने के लिए कस्तूरी ने स्वयं कष्ट झेलकर शिक्षा प्राप्त की और वह झांसी जिले की ग्राम सेविका नियुक्त हुई। आर्थिक रूप से मजबूत होने लगी तो, जिसे पूरा गाँव बोझ मानकर कोसता था, वही लोग कस्तूरी को देवी मानकर उनके सामने झुकने लगे। कस्तूरी के जीवन को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त कराने में उसकी आर्थिक चेतना को ही महत्वपूर्ण माना जा सकता है। अशिक्षा और परावलंबन के खिलाफ़ स्त्री के प्रतिरोध का इतिहास रच रही थी कस्तूरी 'शिक्षित कस्तूरी', 'नौकरीपेशा कस्तूरी'।

भारतीय समाज पुरुष प्रधान है। यदि पुरुष प्रधान समाज में रहना है तो नारी को स्वयं अपने को मजबूत, निडर, साहसी और शिक्षित होने के साथ- साथ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भी होना आवश्यक है। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में लेखिका की आर्थिक स्वतंत्रता के चिह्न देखने को मिलते है। मन्नू भंडारी लेखक राजेंद्र यादव से प्रेम विवाह करती है। पति आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं थे, इसीलिए घर- परिवार चलाने के लिए, समाज में अपनी पहचान, सम्मान और आर्थिक रूप से स्वतंत्रता हासिल करने के लिए मन्नू भंडारी दृढसंकल्प से आगे बढती हैं। शादी से पहले ही मन्नू भण्डारी कलकत्ता के बालीगंज शिक्षा सदन में नौकरी करने लगती है। शादी के बाद घर की आर्थिक जिम्मेदारी के लिए आगे चल कर लेखिका दिल्ली की एक कॉलेज में नौकरी करती है। लेखिका कहती है- "पैसे का संकट चाहे जितना रहा हो ... जरूरत भी रही हो , पर पैसे का लालच तो आज तक कभी नहीं रहा। पैसे के लिए मैंने कभी भी किसी भी तरह के समझौते नहीं किए, न अपने लेखन में न ही अपने व्यक्तिगत जिंदगी में। जितनी चादर थी, उतने ही पैर फैलाने की आदत शुरू से ही डाल ली थी। इसीलिए कभी किसी से उधार नहीं मांगा... न घर बनवाते समय, न टिंगू की शादी के समय और न ही अपनी हारी बिमारी में।"[8] उनके अंदर की लेखिका, कवयित्री अपनी प्रतिभा को उजागर करने लगी जिससे आर्थिक स्थिति के साथ उन्हें सम्मान की भी प्राप्ति हुई।

'लगता नहीं है दिल मेरा' की लेखिका कृष्णा अग्निहोत्री अपने पति को, उनके स्वच्छंद आचरण और अराजक रूप का, सबक सिखाने के लिए पति से अलग हो जाती है। इस व्यवहार से मायके सहित सभी लोग कृष्णाजी पर नाराज़ होते हैं। सबका यही मानना था कि कितनी भी तकलीफ सहन करने पर भी कृष्णाजी को पति के चरणों में ही रहना चाहिए , परन्तु कृष्णा जी कुछ और सोचती है- "मैं अच्छी औरत

सिद्ध न हो सकी और मन ही मन आत्मनिर्भर बनने की दिशा ढूँढने लगी।"[9] कृष्णा अग्निहोत्री जी अपने बूते पर नौकरी पाती है। पति की मारपीट और आर्थिक तंगहाली ने कृष्णा को मजबूर किया कि वह अपना जीवन सम्मान के साथ जी सके और आत्मनिर्भर भी बन सके।

कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा के दूसरे भाग 'और....और....औरत' में भी आर्थिक स्वतंत्रता का रूप देख सकते हैं। कृष्णा अग्निहोत्री जी अध्यापिका के पद से सेवानिवृत्त हुई है । मात्र पेंशन से वह जीवन यापन कर रही हैं, कई दिनों तक किराए के मकान में रहती है। लेखिका को आर्थिक तंगी झेलनी पड़ती थी, वह पैसे संभालकर ही खर्च किया करती थी ताकि उनको किसी दूसरे के आगे हाथ फैलाने की स्थिति का सामना न करना पडे ।

भारत में दलित महिलाओं को उनके अधिकारों से अवगत कराने के लिए काम करने वाली कार्यकर्ता थी रजनी तिलक। उनकी आत्मकथा 'अपनी ज़मीं अपना आसमान' में परिवार की आर्थिक हालत का चित्रण किया गया है। लेखिका की माँ को पढ़ने की बहुत चाहत थी। माँ के परिवार में लड़कियों को पढ़ाने का चलन नहीं था। फिर भी माँ अपनी मर्जी से मामा की देखा- देखी स्वयं अक्षर ज्ञान सीखने लगी थी। माँ की पहली शादी पढ़े लिखे नौकरीपेशा युवक से हुई थी। उनकी नजर में माँ अनपढ़ थी, जिसके कारण पति दो वर्ष बाद धोखे से खाली पेपर पर साइन करवाकर छोड़ गया। अनपढ़ता के कारण पति से धोखा खा चुकी माँ ने संकल्प लिया कि उनकी औलाद अनपढ़ नहीं रहेगी। अपने पेट पालने के लिए वह सिलाई, कढ़ाई सीखना चाहती थी। अपनी बुद्धि, विवेक और लगन से उन्होंने आसपास की औरतों से पूछ- पूछकर कढ़ाई- बुनाई सीखी। माँ अपने बच्चों और अपने आप को आर्थिक रूप से स्वतंत्र रखना चाहती थी। सीमित साधनोंवाले परिवार में जन्मी लेखिका पढ़- लिख कर, त्याग सहन कर, आर्थिक रूप से स्वतंत्र हुई।

कुसुम अंसल की आत्मकथा 'जो कहा नहीं गया' खोए हुए 'आत्म' तथा विस्मृत 'स्व' की तलाश में निकली नारी की कथा है। स्त्री को सफल प्रतिरोध एवं स्वावलंबी होने के लिए आर्थिक संपन्नता आवश्यक है। वस्तुतः स्त्री को पुरुष की चंगुल से मुक्तहोना है तो उसे आर्थिक तौर पर स्वतंत्र होना है। कुसुम के परिवार की आर्थिक स्थिति सुधरती है परंतु पति की चाहत कुसुम के लिए मृगमरीचिका के समान है। कुसुम अंसल साहित्य की संजीवनी प्राप्त करती है, उत्तरोत्तर प्रगति के पद पर चलकर एक सफल लेखिका बनती है साथ ही कई शिक्षण संस्थाओं की संस्थापिका भी, जो कर्मठता, लगन की प्रतिमूर्ति होती है। कुसुम अंसल की इस सफलता पर डॉ दया दीक्षित कहती है- "एक आम भारतीय गृहिणी की तरह पति, घर, बच्चों की परवरिश पढ़ाई- लिखाई में अपने को खपा देने के बाद भी अपने स्व को बचा ले जाना , बचाकर उसे रचनात्मक की तरफ संचरित कर देना आसान तो हो ही नहीं सकता। निसंदेह यह आत्मकथा जीवन के थके उदास हारे हुए विपरीत परिस्थितियों में जीते हुए लोगों के लिए संबल और प्रेरित है।"[10]

आर्थिक समस्या एक ऐसी समस्या है जिससे व्यक्ति का जीवन बहुत अधिक प्रभावित होता है। शिक्षा से नारी का व्यक्तित्त्व बेहतर बनने लगा। वह स्वावलंबी होने लगी है। शिक्षा एवं अर्थ स्वायत्तता से उसका आत्मबल बढ़ने लगा है। पुरुषों से, स्त्रियों का आर्थिक रूप से स्वातंत्र्य देखा नहीं जाता। लेकिन उनके समक्ष आर्थिक रूप से सबल बनाना उनका लक्ष्य होना चाहिए। आर्थिक स्वतंत्रता स्त्री की पहली ज़रूरत होनी चाहिए। अर्थ व्यक्तिको स्वावलंबी बना सकता है। अपने अनुभवों को साझा करके इन लेखिकाओं का लक्ष्य अन्य महिलाओं को अपने आर्थिक लक्ष्यों को आगे बढ़ाने और यथास्थिति को चुनौती देने के लिए प्रेरित करना और सशक्त बनाना है। महिलाओं की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता आर्थिक स्वतंत्रता ही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची ;

1. डॉ ओ पी वर्मा - भारतीय सामाजिक व्यवस्था विकास प्रकाशन 311 सी विश्व बैंक बर्रा- कानपुर- 209027 संस्करण 2008 ई. पृ. 48
2. डॉ संदीप रणभीरकर- स्त्री विमर्श चिंतन बनाम सृजन (लेख) सं डॉ.सौ अंजलि चौधरी पृ.13
3. प्रभा खेतान- अन्या से अनन्या पृ.208
4. सिमोन द बोउवार- उपेक्षिता नारी पृ.354
5. प्रभा खेतान- अन्या से आनन्या पृ 131
6. कौशल्या बैसंत्री- दोहरा अभिशाप पृ 105
7. कौशल्या बैसंत्री- दोहरा अभिशाप पृ 124
8. मन्नू भण्डारी- एक कहानी यह भी पृ 130
9. कृष्णा अग्निहोत्री- लगता नहीं है दिल मेरा पृ 194
10. सं एम फिरोज अहमद-कथाकार कुसुम अंसल : एक मूल्यांकन पृ 291

शोध छात्रा, महाराजास कॉलेज ? एर्नाकुलम

भारतमाता के गले का हार है हिंदी

डॉ गौरव रंजन

भाषा का प्राथमिक कार्य संवाद करना जरूर है किंतु भाषा वह आधार है जो संपूर्ण समाज एवं देश को भावात्मक एवं सांस्कृतिक स्तर से संयोजित करके रखती है। यह मानव समाज की जरूरतों के कारण उसके आंतरिक स्वभाव से उत्पन्न हुई। इसी कारण जनसमूह को भावनात्मक रूप से जोड़े रखने में किसी भी देश की भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। हम जहाँ की बात करें, यही दिखता है कि वहाँ की सामाजिक-सांस्कृतिक एकता का आधार संबंधित भाषा ही है। भारतीय संदर्भ में हिंदी का यही कार्य है। 14 सितम्बर 1949 को भारतीय संविधान ने हिंदी को राजभाषा के रूप में अपनाया था इसलिए इस दिन को हम हिंदी दिवस के रूप में मनाते हैं, किंतु हिंदी केवल राजभाषा ही नहीं है। राजभाषा से आगे बढ़कर यह राष्ट्रजीवन का संवाद सूत्र बनते हुए पूरे देश को एक करने और एक बनाए रखने में महत्वपूर्ण दायित्व निभा रही है। कहीं यह मुख्य भूमिका में है खासकर उत्तर भारतीय समाज में, तो कहीं यह स्थानीय भाषाओं की सहयोगी के रूप में विभिन्न समाजों की एकजुटता का प्रमुख कारक बन रही है।

हिंदी का विकास देवभाषा संस्कृत से हुआ है। हिंदी के विकास की प्रक्रिया संस्कृत से शुरू होकर पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ट और अवहट्ट से पुरानी हिंदी, पुरानी से आधुनिक हिंदी तक पहुँचती है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के अनुसार अवहट्ट पुरानी हिंदी है।

इसका रूप कालक्रम से बदलता रहा है और आधुनिक हिंदी के रूप में यह बारह राज्यों एवं पाँच संघ शासित प्रदेशों की आधिकारिक भाषा एवं दूसरी राजभाषा है। एक सर्वेक्षण के अनुसार हिंदी विश्व मे तीसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। भारत के बाहर यह सूरीनाम, गुयाना, मॉरीशस एवं त्रिनिनाद में बोली जाती हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की 41 प्रतिशत जनसंख्या की मातृभाषा हिंदी है एवं 75 प्रतिशत भारतीय ऐसे हैं जिनकी दूसरी भाषा हिंदी हैं। अर्थात् वे हिंदी को बोल एवं समझ सकते हैं, जहाँ अपनी मातृभाषा में संवाद में कठिनाई हो वहाँ आपसी संपर्क के लिए वे हिंदी का प्रयोग करते हैं। हिंदी हमारी सामाजिक संचार की भाषा रही है। जिस भाषा मे हम सोचते हैं, जिसमे सपने देखते हैं, वही भाषा हमारी आत्मा की भाषा होती है, भारतीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी का यही स्थान है।

हिंदी को व्यापकता कालक्रम में बढ़ती गई है। यह दिलचस्प है कि प्रत्यक्षतः और परोक्षतः हिंदी के विकास में गुजरात का बड़ा योगदान रहा। आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिंदी के प्रचार-प्रसार की जरूरत पर पर्याप्त बल दिया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में माना और स्वतंत्रता से तीस साल पहले 1917 में गुजरात के भरूच में एक आयोजन में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की जरूरत पर बल दिया। इसी वर्ष चंपारण को उन्होंने अपनी कर्मभूभि बनाया और सत्याग्रह के साथ हिंदी के प्रचार-प्रसार की जो मशाल वहाँ से जली उसकी लौ दिनोंदिन बढ़ती ही गई। इस अभियान ने दक्षिण भारत तक अपनी धमक दिखाई। अब तो यह स्पष्ट ही हो गया है कि भारतीय भाषाओं में हिंदी ही ऐसी भाषा हैं जिसे राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाया जा सकता हैं क्योंकि यह अधिकांश भारतीयों द्वारा बोली जाती हैं। यह समस्त भारत में आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक सम्पर्क माध्यम के रूप में प्रयोग के लिए सक्षम हैं तथा कमोबेश इसका व्यवहार पूरे भारत में होता है।

स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी की महत्वपूर्ण भूमिका रही। विभिन्न समाचार पत्रों, लेखों, नारों में हिंदी के प्रयोग ने लोगों को अंग्रेजों के विरुद्ध खड़ा होने के लिए प्रोत्साहित किया। देशभक्तिकी भावना को उत्साहित करने में हिंदी की व्यापक भूमिका रही। ऐसे में हिंदी को संवाद का माध्यम भर समझना इसके साथ बेईमानी होगी। देखने में यह आता है कि हिंदी भारतीयों के लिए सामाजिक एवं सांस्कृतिक समरसता की सेतु है।

हिंदी अनेक भारतीयों के लिए मातृभाषा, शिक्षा की भाषा के साथ साथ रोजगार की भी भाषा है। अंग्रेजी शासन ने हिंदी का नुकसान करते हुए अंग्रेजी को रोजगार की भाषा बनायी क्योंकि इससे उनकी औपनिवेशिक विस्तार की भावना पुष्ट होती थी। आज़ादी के बाद हमने हिंदी को हृदय की भाषा का स्थान दिया किंतु अंग्रेजी को पेट की भाषा बनाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। हिंदी यहाँ मार खाने लगी और शायद तभी आचार्य विनोबा भावे ने कहा था "मैं दुनिया की सभी भाषाओं की इज्जत करता हूँ पर मेरे देश में हिंदी की इज्जत न हो, यह मैं सह नही सकता।"

भाषा दिलों को जोड़ती है और हमारी चिंतन प्रक्रिया की मौलिकता को अक्षुण्ण बनाए रखने में भाषा की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है। लेकिन यह जानसमझकर भी वर्षों तक हम इस दिशा में निष्क्रिय रहे और अंग्रेजी का वर्चस्व बना रहा। हाल में जो सांस्कृतिक चेतना आई है उसी की परिणति नई शिक्षा नीति 2020 में दिखती है जहाँ भाषा का मुद्दा प्रमुख रूप से चर्चा का केंद्रबिंदु बन गया। नई शिक्षा नीति में समाज के बौद्धिक विकास में मातृभाषा की भूमिका को स्पष्ट किया गया है। इसमें पाँचवीं कक्षा तक की शिक्षा या तो क्षेत्रीय भाषा या फिर मातृभाषा में दिए जाने का निर्देश है। इससे अंग्रेजी पर निश्चय ही हमारी निर्भरता कम हो जाएगी। साथ ही हमारी समृद्ध क्षेत्रीय भाषासमूहों के साथ- साथ हिंदी की वरीयता और बढ़ेगी। वर्तमान सरकार ने भाषा की शिक्षा में योग्यता को समझते हुए नई शिक्षा नीति में एक उप अध्याय 'बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति' को स्थान दिया है।

भारत गाँवों का देश है जहाँ आज भी क्षेत्रीय भाषाओं, बोलियों एवं हिंदी का उपयोग किया जाता है, किंतु हमारे देश की विडंबना है कि यहाँ की उच्च शिक्षा औपनिवैशिक जाल में इस कदर उलझी है कि उच्च शिक्षा का तात्पर्य ही अंग्रेजी से हो गया है। जिस देश की अधिकतर आबादी का परिवेश ग्रामीण हो उसमें अंग्रेजी को इतनी प्राथमिकता देना अपने आप में आश्चर्यजनक है। विशेषज्ञ कहते रहे हैं कि उच्च शिक्षा में अंग्रेजी की अनिवार्यता छात्रों के आत्मविश्वास को कमजोर करती है। हिंदी एवं अन्य भाषओं में पाठ्यक्रमों की उपलब्धता में कमी के कारण अपने ही बच्चों के भविष्य को हम अंधकारमय बना देते हैं। नई शिक्षा नीति 2020 वस्तुतः इस समस्या के समाधान के रूप में दिखती है अगर इसे ठीक से लागू कर दिया जाए।

प्रत्येक समाज को अपनी भाषा, संस्कृति एवं संस्कार पर गर्व महसूस होना चाहिए। अपने मूल्यों-विचारों एवं मौलिकता से युक्तसमाज का निर्माण तब ही संभव हो सकेगा। इसमें कोई दो राय नहीं है कि हिंदी भारतीय परिवेश में संचार का सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम है। आधुनिक दौर में जरूरत इस बात की है कि हिंदी को बाजार की, और रोजगार की भाषा बनाया जाए ताकि वह अपना उचित स्थान प्राप्त कर सके। इसलिए नए भारत के निर्माण में हिंदी की भूमिका के विस्तार की अपेक्षा की जाती है। समावेशी और लोकमंगल की कामना से युक्तसमाज का निर्माण तब ही संभव हो सकेगा जब हिंदी को लेकर आग्रह बढ़े क्योंकि हिंदी में ही वह शक्ति है कि यह सबको जोड़ सके। पूर्व राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन का हिंदी के संदर्भ में यह वक्तव्य हमेशा याद रखने लायक है कि 'हिंदी वह धागा है जो विभिन्न मातृभाषाओं रूपी फूलों को पिरोकर भारत माता के लिए सुंदर हार का सृजन करेगा'।

सहायक प्राध्यापक , पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
ओडिशा केंद्रीय विश्वविद्यालय

स्वतंत्रता दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ

रमेश बक्षी के कथा साहित्य में अस्तित्व की तलाश

नीतु एन एस

15 अगस्त 1936 को जन्मे रमेश बक्षी एक प्रमुख हिंदी लेखक हैं जो अपने बहुमुखी व्यक्तित्त्व और अद्वितीय दृष्टिकोण के लिए जाने जाते हैं । मध्य प्रदेश के इंदौर में जन्मे, उन्होंने एक पत्रकार के रूप में अपना करियर शुरू किया और बाद में हमीदिया कॉलेज और भोपाल में पढ़ाया। वह 'ज्ञानोदय' के संपादक थे और उन्होंने ऑल इंडिया रेडियो और चिल्ड्रेन्स बुक ट्रस्ट में काम किया। बक्षी ने साहित्य की विभिन्न विधाओं की रचना की और प्रत्येक में सफलता हासिल की। उन्होंने कविता सहित सभी शैलियों के प्रति अपनी स्थिति और प्रेम के अनुरूप शैलियों को बदल दिया। मुख्य कृतियाँ : 1.कहानी संग्रह : मेज़ पर टिकी हुई कहानियाँ, कटती हुई ज़मीन, दुहरी जिंदगी, पिता-दर-पिता, एक अमूर्त तकलीफ , मेरी प्रिय कहानियाँ, दस प्रतिनिधि कहानियाँ। 2.उपन्यास : हम तिनके, किस्से उपर किस्सा,अठ्ठारह सूरज के पौधे, बैसाखियों वाली इमारत, चलता हुआ लावा, खुलेआम। 3.नाटक : देवयानी का कहना है, तीसरा हाथी, वामाचार, छोटे नाटक, एक नाटककार, कसे हुए तार, खाली जेब। 4.कविता संग्रह : बूमरेंग। 5.व्यंग्य : गुस्ताखी माफ, अपने-अपने लतीफे। 6.बाल साहित्य : तिली-तितली (कहानियाँ), हँस नाटक (नाटक) 7.संपादन : जानीट्य (कोलकाता से निकलने वाली मासिक साहित्यिक पत्रिका), आवेश(लघु पत्रिका), शंकर्स वीकली (साप्ताहिक पत्रिका), भुवनेश्वर की चुनी हुई रचनाएँ।

बक्षी, समय की विसंगतियों, टूटी मान्यताओं और विकृत मूल्यों के प्रति अपने गुस्से के लिए जाना जाता है। उनकी स्पष्ट वादिता और निडरता ने उन्हें एक अद्वितीय व्यक्तित्त्व बना दिया है। वह अपने कई उपन्यासों और कहानी संग्रहों के लिए जाने जाते हैं, और थिएटर के प्रति अपने आकर्षण के कारण उन्होंने नाटक लेखन में भी प्रवेश किया है। बक्षी का कथा साहित्य यथार्थवाद का एक अनूठा रूप प्रस्तुत करता है, जो जीवन की वास्तविकता के बजाय मनोवैज्ञानिक वास्तविकता पर केंद्रित है। उन्होंने वैचारिक यथार्थ का समर्थन किया और साहित्य के नियमों से आगे निकल गये। बक्षी ने अप्रत्याशित, परिचित स्थितियों और एक अद्वितीय, मजाकिया और कच्चे दृष्टिकोण का उपयोग करके, अपने उपन्यास में वास्तविकता का खुलकर चित्रण करके पाठकों और आलोचकों को आश्चर्यचकित कर दिया। उनके अनूठे दृष्टिकोण ने हिंदी कथा साहित्य को एक नया दृष्टिकोण दिया है, जीवन की वास्तविकता को उजागर किया है और शैली को एक नया दृष्टिकोण दिया है।

किसी व्यक्ति का अस्तित्व चेतना, पहचान और व्यक्तिप्रक अनुभवों का एक जटिल परस्पर क्रिया है, जो आनुवंशिकी, पालन-पोषण, सांस्कृतिक प्रभाव और व्यक्तिगत अनुभवों जैसे कारकों से आकार लेता है। यह खुशी, दुःख, विजय और प्रतिकूलता से चिह्नित आत्म-खोज की यात्रा है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी यात्रा में अर्थ, उद्देश्य और पूर्ति की तलाश करता है, जीवन की जटिलताओं के बीच समझ, संबंध और विकास की खोज में मानव होने के सार पर प्रकाश डालता है। बक्षी जी का उपन्यास स्थिरता और अस्तित्व की अवधारणा की पड़ताल करता है, जो आम लोगों से बहतर जीवन जीने के नायक के संघर्ष पर केंद्रित है। नियम बनाने की तुलना में सीमाएँ तोड़ना अधिक महत्वपूर्ण है। यह व्यक्ति की अनूठी इच्छाओं और उनके अस्तित्व के महत्व पर प्रकाश डालता है। 'बैसाखियों वाली इमारत' उपन्यास में पत्रकार अपनी पत्नी के साथ बुरा व्यवहार करता है और उसे लगातार परेशान करता है । कई बार अपनी स्थिति समझाने के बावजूद, रिश्ता अपरिवर्तित बना हुआ है । नायिका का अस्तित्व जाग उठता है, क्योंकि जीवन में पति से रिश्ता सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है । जब पति उसके अस्तित्व को चुनौती देता है तो "मैं कल सुबह की ट्रेन से जा रही हूँ।' 'क्या मतलब ?'

'यह मेरा फैसला है।' वह दरवाजे से लगकर खड़ी हो गयी थी,' न आप ऐसे ठीक होते, न वैसे ठीक होते। यह मत सोचिये आप कि मैं आपके आश्रित हूँ, आप टुकड़े नहीं

फेंकेंगे तो मैं क्या खाउँगी। मैं अपने पैरों पर खड़ी हो सकती हूँ....।"[1] कहानी व्यक्तिके अस्तित्व के महत्व और उससे होने वाले अपमान पर प्रकाश डालती है।

नायक की पहचान की खोज साहित्य और कहानी कहने का एक सामान्य विषय है, जो आत्म-खोज और आत्म-परिभाषा के लिए सार्वभौमिक मानवीय खोज को दर्शाता है। यह विषय मिथकों, किंवदंतियों और बक्षी के कहानियों में मौजूद है, जो विभिन्न संस्कृतियों और पीढ़ियों के पाठकों के बीच गूँजता रहता है। नायक की यात्रा अक्सर असंगति या अशांति की भावना से शुरू होती है, जो उन्हें अर्थ और प्रामाणिकता की तलाश में ले जाती है। उन्हें परीक्षणों, चुनौतियों और रहस्योद्घाटन का सामना करना पड़ता है जो उनके साहस, लचीलेपन और अखंडता का परीक्षण करते हैं। यह यात्रा न केवल व्यक्तिगत है बल्कि सांस्कृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक भी है, जो व्यापक सामाजिक संघर्षों को दर्शाती है। नायक का संघर्ष पहचान की राजनीति, सांस्कृतिक अस्मिता और परंपरा और आधुनिकता के टकराव को प्रतिबिंबित करता है। बाहरी बाधाओं और आंतरिक संघर्षों का सामना करके, नायक लचीलेपन और सशक्तिकरण का प्रतीक बन जाता है, दूसरों को आत्म-खोज और आत्म-बोध की अपनी यात्रा को अपनाने के लिए प्रेरित करता है। पहचान के लिए नायक का खोज विकास, परिवर्तन और अतिक्रमण की मानवीय क्षमता का एक प्रमाण है, जो हमें याद दिलाती है कि पहचान हमारी पसंद, अनुभव और रिश्तों से आकार लेने वाली एक गतिशील प्रक्रिया है।'चलता हुआ लावा' में रमेश जी नायक के अनुभवों का वर्णन करता है क्योंकि वह गुलामी और परतंत्रता के अर्थ से बंधा हुआ है। लोगों द्वारा उठाये जाने के बावजूद वह आगे बढ़ने में असमर्थ महसूस करता है। लेखक व्यक्ति की कठपुतली जैसी स्थिति और जीवन में स्वतंत्रता के महत्व पर जोर देता है। नायक कहते हैं कि मैं तो केवल इस बात पर जोर देना चाहता हूँ कि मैं मर गया था अगर तो उसे स्वीकार कर लेने में मेरी कोई हे? नहीं है लेकिन जब जीवित हो गया हूँ या संयोग से जीवित हो उठा हूँ तो मुझे इस अर्थी से मुक्तिमिलनी चाहिए।"[2] नायक का मानना है कि अगर वह मर गया होता, तो वह इसे स्वीकार कर लेता, लेकिन वह दुनिया से उसे जीने का मौका देने के लिए कहता है। कहानी दाह संस्कार के व्यावहारिक सत्य को उजागर करती है, लेकिन नायक सवाल करता है कि इससे किसे लाभ होता है और जीने का मौका मांगता है, जो अंततः नायक की पहचान की खोज को उजागर करता है।

बक्षी जी के साहित्य अक्सर वर्ग मतभेदों के बावजूद लोगों के एक जैसे रहने के विषय की पड़ताल करता है, विभिन्न पृष्ठभूमि के व्यक्तियों के बीच साझा मानवता को उजागर करता है। यह विषय सामाजिक असमानता, मानवीय लचीलेपन और सार्वभौमिक अनुभवों की खोज के लिए एक शक्तिशाली रूप में कार्य करता है। बक्षी जी के साहित्य पाठकों को जीवन के सभी क्षेत्रों के पात्रों के साथ सहानुभूति रखने के लिए आमंत्रित करता है, हमें हमारी आंतरिक गरिमा और सामान्य बंधनों की याद दिलाता है जो हमें मानव परिवार के सदस्यों के रूप में जोड़ते हैं। 'कुछ बच्चे कुछ माँएँ ' कहानी में तीन माताओं और तीन बच्चों के अस्तित्व को चित्रित करती है। कहानी से 'मेरे प्याले में चाय ठंडी होती गयी'। मैं देख रहा था कि बाबा और मुन्ना और उस गंदे बच्चे में कोई फर्क नहीं। दोनों एक जैसे हैं। कप और प्लेट और गिलास किसी भी रूप के हों, हैं तो बरतन ही। कप की चाय और प्लेट की चाय और गिलास की चाय का स्वाद एक ही है, सुआपंखी साड़ी चाली मम्मी और वह भिखारिन तीनों नारी हैं, पर एक नहीं है, क्योंकि तीन अलग-अलग वर्गों की पत्नियाँ हैं वे।"[3] वर्ग भेद के बावजूद लोगों का मूल अस्तित्व वही रहता है। तीनों महिलाएँ अस्तित्व के अर्थ में 'अहंकार' की भावना पर जोर देते हुए, अपने गौरव और प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए अपने बच्चों को बचाती हैं।

मान-सम्मान बनाए रखने का महत्व विभिन्न कारकों से प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए, पूरे सोलह आने में ,एक प्रोफेसर की टूटी हुई सैंडल बच्चों के सामने अपमानित हो सकती है, शर्मिंदगी का कारण बन सकती है। हालाँकि, एक नायक का अनुभव दर्शाता है कि छोटी असुविधाएँ भी किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकती हैं। नायक का अनुभव - "मैंने सोचा कि ऐसी छोटी-छोटी बातों पर अगर मुझे शर्म आती, तो अभी तक मैं अधमरा हो गया होता। एक बार मेरे जूते ऐसे खराब हो गये थे कि

पहनने में हो चुभते थे, तो मैं उन्हें बैली में रखकर बाजार जाता और दूर से ही देख लेता कि वह लाल शर्टवाला आदमी पहचान का आ रहा है, तो जूते पहन लेता। यह तभी करता, जब आदमी जोरदार दिखता और बगैर जूते के उसके सामने जाने में मेरा अस्तित्व खतरे में पड़ने का अंदेशा होता। बातें कर उसे विदा कर लेता। वह गया नहीं कि मैं जूते वापस थैली में रख लेता और आगे बढ़ जाता।"[4] जूते इंसान की ज़रूरत हैं और इनसे उनका अपमान संभव है । इस प्रतिक्रिया का मुख्य कारण वर्ग भेद है, जहाँ व्यक्ति को जितना अधिक नाम मिलता है, उसे उतना ही अधिक अपमान मिलता है । गरीबों के लिए मान-अपमान दोनों बराबर है। वर्ग भेदभाव एक ऐसी प्रणाली है जहाँ व्यक्तियों को उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार पर आंका जाता है और उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है । यह प्रणाली अंतर्निहित मूल्य और गरिमा से अधिक धन, स्थिति और विशेषाधिकार को महत्व देती है, जिससे हाशिए पर और अपमानजनक रूढ़िवादिता पैदा होती है। नामों का संचय सामाजिक स्थिति के प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व के रूप में कार्य करता है, प्रत्येक अतिरिक्त नाम सामाजिक अपेक्षाओं और पूर्वाग्रहों का भार वहन करता है । इसके परिणामस्वरूप कम नाम वाले व्यक्तियों को अनुचित लक्ष्यीकरण और मौखिक दुर्व्यवहार होता है। वर्ग भेदभाव न केवल मनोवैज्ञानिक नुकसान पहुँचाता है बल्कि प्रणालीगत असमानताओं को भी कायम रखता है जो सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक अवसर में बाधा उत्पन्न करता है। वर्ग भेदभाव से निपटने के लिए, शिक्षा, वकालत और नीति सुधार जैसे सामाजिक मानदंडों और पूर्वाग्रहों को चुनौती देना आवश्यक है। सहानुभूति, समझ और एकजुटता को बढ़ावा देने से एक ऐसी दुनिया बनाने में मदद मिल सकती है जहाँ हर किसी के साथ सम्मान और समानता का व्यवहार किया जाता है, चाहे उनका सामाजिक वर्ग कुछ भी हो।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि रमेश बक्षी, ने सामाजिक नियमों से अलग होकर नई सोच अपनाने की कोशिश की । उनका मानना था कि मानव मन की आंतरिक दुनिया सामाजिक मानदंडों से परे है और समाज का डर अक्सर मानसिक वैचारिक समझ को दबा देता है। बक्षी का साहित्य इस आग्रह को दर्शाता है, जो व्यक्तियों से सामाजिक बाधाओं से मुक्त होने और स्वतंत्रता को अपनाने का आग्रह करता है । उन्होंने सुख-सुविधाओं, समृद्धि और लंबे समय से चली आ रही धार्मिक मान्यताओं को चुनौती देते हुए भारतीय अस्तित्ववाद को अपनाया।

संदर्भग्रंथसूची

1. रमेश बक्षी - बैसखियों वाली इमारत - राष्ट्रभाषा संस्थान सी-8/174, यमुना विहार दिल्ली- 110051 - सं 2005
2. रमेश बक्षी - चलता हुआ लावा - राष्ट्रभाषा संस्थान सी - 8/174, यमुना विहार दिल्ली - 110051 - सं 2005
3. रमेश बक्षी - मेज़ पर टिकी हुई कहानियाँ - राष्ट्रभाषा प्रकाशन, दिल्ली - 110032- सं.1993
4. डॉ अमर जायसवाल - हिन्दी के बहुचर्चित उपन्यास और उपन्यासकार - विद्या विहार - गांधीनगर कानपुर- 12 - सं.1984
5. सं प्रो. दिलीप सिंह -आलोचना की दृष्टियाँ - दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा त्यागराज नगर चेन्नई -600017 - सं.2006
6. पी.सी जैन एल एल दोषी -भारतीय समाज संरचना और परिर्तन - नेशनल पब्लिशिंग हाउस जयपुर -302003 - सं.2002
7. सत्यकाम -आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द्र - राधाकृष्ण प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली-110002 सं.1994
8. डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय - बिन्दु प्रतिबिन्दु समकालीन आलोचना- पंचशील प्रकाशन फिल्मी कालोनी जयपुर- 302003 - सं.1984

संदर्भ

1. रमेश बक्षी - 'बैसाखियों वाली इमारत' - पृ सं 98
2. रमेश बक्षी - 'चलता हुआ लावा' - पृ सं 40
3. रमेश बक्षी - 'मेज़ पर चिकी हुई कहानियाँ' - पृ सं 85
4. रमेश बक्षी - 'मेज़ पर चिकी हुई कहानियाँ' - पृ सं 109

शोध छात्रा, हिंदी विभाग
यूनिवेर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में असुर समाज का यथार्थ

ज्योति एवं **डॉ सपना शर्मा**

उपन्यास गद्य लेखन की एक प्रक्रिया है। यह एक ऐसी कल्पना है जिसमें शब्दों के माध्यम से मानव जीवन को चित्रित किया जाता है। उपन्यास ऐसी कथा होती है जिसके अन्तर्गत अनेक गौण कथाएँ समाहित रहती हैं। उपन्यास को साहित्य की महत्वपूर्ण विधा माना जाता है। उपन्यास काव्य और नाटक की अपेक्षा आधुनिक काल की सशक्त साहित्य विधा है। क्योंकि इसमें मनोरंजन के तत्व अधिक रहते हैं। यह जीवन की बहुमुखी छवि को व्यक्त करने की शक्ति रखता है। पश्चिम के सुप्रसिद्ध दार्शनिक "हेगेल ने एक विधा के रूप में उपन्यास को आधुनिक चेतना से जोड़ते हुए आधुनिक युग का महाकाव्य कहा है। परन्तु भारतीय उपन्यासों के अलग अनुभव, परम्परा और ढांचे की बात कही गयी है।"[1]

डॉ. श्यामसुन्दर दास "मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा को उपन्यास मानते हैं।"[2]

नलिनविलोचन शर्मा प्रसिद्ध इतिहासकार हैं, जिन्होंने हिन्दी उपन्यास विषयक लिखा है कि "हिन्दी उपन्यास का इतिहास, किसी भी देश के उपन्यास के इतिहास की तरह हिन्दी भाषा-क्षेत्र की सभ्यता और संस्कृति के नवीन रूप के विकास का साहित्यिक प्रतिफलन है।"[3]

आज उपन्यास सामाजिक अस्मिता के अन्वेषण का माध्यम बन गया है। साहित्य में जो विधा समकालीन विधाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझी गयी वह विधा उपन्यास ही है।

रचनाकार रणेन्द्र की प्रसिद्धि का कारण उनके दो उपन्यास 'गायब होता देश' और 'ग्लोबल गांव का देवता' हैं। जिसमें इन्होंने आदिवासी जनजातियों की स्थिति पर प्रकाश डाला है।

दुनिया के हर कोने में कुछ ऐसे मानव समुदाय वास कर रहे हैं, भारत में भी निवास कर रहें जो अन्य समुदायों की अपेक्षा पिछड़े हुए हैं। जिन्हें आदिवासी या जनजाति शब्द से सम्बोधित किया जाता है। वह स्वयं को जंगल का मूल निवासी और जंगल को अपना पालन कर्त्ता मानने लगे। जनजाति शब्द का प्रयोग किसी भी भौगोलिक क्षेत्र के उन निवासियों के लिए किया जाता है, जिनका उस भौगोलिक इतिहास से सबसे पुराना सम्बन्ध रहा हो। ये सभ्य समाज से दूर जंगल, पहाड़ और पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करते हैं। इनको अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है, जैसे वन्य जाति, पहाड़ी लोग, आदिम जाति आदि।

भारत में अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं। देश की कुल जनसंख्या का (8.02%) भाग आदिवासी जनजातियों का है। जे.पी.सिंहः जनजातियों के बारे में विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि "सांस्कृतिक रूप के समरूप समुदाय जिसका सामान भू-भाग भाषा तथा एक ही पूर्वज वंश होता है। यह एक अंतर्विवाह समूह है। इसके सदस्यों का सामाजिक स्तर एक होता है। जिन्हें जनजाति कहते हैं।"[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं। जिनमें से असुर जनजाति भी एक है। असुर भारत में रहने वाला एक प्राचीन आदिवासी समुदाय है। असुर जनजाति मुख्य रूप से झारखण्ड और पश्चिम बंगाल, उड़ीसा में पाई जाती है। झारखण्ड में असुर मुख्य रूप से गुमला और लातेहर जिलों में निवास करते हैं। असुर जनजाति के तीन उपवर्ग है-

वीर असुर - जो शिकार करते है।

बिरजिया असुर - जो खेती, व्यापार और शिकार करते हैं।

अगरिया असुर - ये उच्च वर्ग के गोरे रंग के असुर होते हैं। ये मुख्य रूप से पंचायतों का मामला देखते हैं।

असुर समाज 12 गोत्रों में बंटा हुआ है। असुरों के गोत्र के नाम विभिन्न प्रकार के अनाज, जानवर और पक्षी के नाम पर रखे जाते हैं। "इनके समाज में लोग संयुक्त परिवार में रहते हैं, पिता परिवार का मुखिया होता है और असुर समाज, असुर पंचायत के नियमों से चलता है। असुर

पंचायत के अधिकारी प्रधान या पुजारी होते हैं। ये लोग शिकार करके अपना पेट पालते हैं क्योंकि इनके पास खेती करने के लिए जमीन नहीं होती परन्तु वर्तमान समय में यह लोग लोहा गलाने, बर्तन बनाने का काम कर रहे हैं।''[6] ये लोग जंगल में लकड़ी घास और बांस के घरों में रहते हैं। शिकार करने के कारण यह माँसाहारी होते हैं। असुर प्रकृति पूजक होते हैं। सिंगबोगा उनके प्रमुख देवता हैं। 'सइसी कुटायी' इनका प्रमुख त्योहार है। जिसमें यह अपने औजारों की पूजा करते हैं।

असुर जनजाति 'मुण्डारी' भाषा का प्रयोग करते हैं। ये अपनी भाषा को असुरी भाषा की संज्ञा देते हैं। इसके अतिरिक्त वर्तमान में यह हिन्दी भाषा का भी प्रयोग करने लगे हैं। उपन्यासकार रणेन्द्र ने अपने उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में असुर जनजाति के विभिन्न पहलुओं को गहनता के साथ चित्रित किया है जिसका वर्णन इस प्रकार है-

अंधविश्वास

असुर आदिवासी समुदाय धार्मिक मूल्यों को बहुत अधिक महत्व देते हैं, वह अपनी संस्कृति के प्रति सजग रहते हैं। उनके कुछ ऐसे अंधविश्वास है, जिन्हें वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी से मानते चले आ रहे है। जैसे कि इस उपन्यास के माध्यम से भी इसे विवेचित किया गया है। दरअसल अभी कुछ लोगो के मन में यह बात बैठी हुई है कि धान को आदमी के खून से सान कर बिछड़ा डालने से फसल अच्छी होती है।''[7]

असुर आदिवासी जनजातियों में यह मान्यता है कि देवता या देवी को प्रसन्न करने के लिए मानव बलि की आवश्यकता होती है। 'ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास में आदिवासियों में विशेषकर असुर आदिवासियों में व्याप्त अंधविश्वास की ओर संकेत किया गया है।

उपन्यास में एक अन्य स्थान पर बताया गया है कि आदिवासी स्कूल में केअरटेकर गन्दूर आदिवासी है। उसके नाम गन्दूर को लेकर अंधविश्वास है कि उसके पहले भाई-बहन की जन्म के समय ही मृत्यु हो जाती थी। इसलिए गन्दूर के जन्म के समय उसकी दादी ने उसे कूड़े के ढ़ेर में फेंक दिया और वह बच गया। ''गन्दूर अपने नाम के बारे में बताते हुए मास्टर साहब से कहता है कि मेरे भाई-बहन की मृत्यु के बाद, दादी ने मुझे जन्म के समय कपड़े में लपेट कर घर के बाहर कूड़े में फैंक दिया, और मैं बच गया। उस दिन से मेरा नाम गन्दूर पड़ गया।''[8] यहाँ गन्दूर की दादी का यह अंधविश्वास है कि अगर जन्म के समय बच्चों की मृत्यु होती है, तो उन्हें बचाने के लिए बच्चे को जन्म के समय कपड़े में लपेट कर कूड़े में फैंकने से बच्चे की असमय होने वाली मृत्यु टल जाती है। इसलिए उन्होंने गन्दूर को बचाने के लिए उसे कूड़े में फैंक दिया था और वह बच भी गया।

उपन्यास में मानव बलि की प्रथा के अंधविश्वास को भी रेखांकित किया गया है- ''भौरापाट गाँव से सटे पहाड़ में एक अस्सी फीट गुफा है। जिसकी चढ़ाई कठिन है। कहा जाता है कि वहाँ देवी थान हैं। देवी को जब बलि की जरूरत होती है तब गुफा से नगाड़े की आवाज आने लगती है। बलि के बाद अपने आप नगाड़ों की आवाज बंद हो जाती है।''[9]

इस कथा में गाँव का बुधराम सिंह लोगों को इस अंधविश्वास की जानकारी देता है। प्रस्तुत उदाहरण में बलि को लेकर असुर जनजाति के इसी अंधविश्वास को उद्धृत किया गया है।

गरीबी की समस्या

असुर आदिवासी जनजाति जंगलों में निवास करती हैं। असुर जनजाति के पास इतनी जमीन नहीं होती कि वह पूरे साल का अनाज उगा सके। जिनके पास थोड़ी बहुत जमीन थी वह लोग बरसात के उपर ही निर्भर रहते थे। जिसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

''आदिवासी गरीब है, उनकी उत्पादकता कम है क्योंकि उनकी ज़मीन कम हैं। उनकी ज़मीन बहुत उपजाउ नहीं है। उनके पास सिंचाई के साधनों का आभाव है।''[10]

उपर्युक्त उदाहरण में बताया गया है कि असुर जनजाति गरीबी से जुझ रही हैं जो थोड़ी बहुत ज़मीन हैं वह भी सिंचाई के अभाव में उस रूप से उत्पादक नहीं हो पाती है। भोजन के लिए असुर जनजाति को कितनी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। इस कारण वर्तमान समय में असुर जनजाति के लोग अपना निवास स्थान छोड़कर अन्य देशों में पलायन कर रहे हैं।

प्राकृतिक सम्पदा एवं जल की समस्या : असुर आदिवासी अपनी प्राकृतिक सम्पदा और नदियों के जल की समस्या को लेकर भी संघर्ष कर रहे हैं जिसको इस उदाहरण से समझा जा सकता है- "छतीसगढ़ के रायपुर जिले से होकर बहने वाली एक बड़ी नदी शिवनाथ द्वारा एक औद्योगिक समूह को बेच दी गई उसका निजीकरण हो गया। कुछ गाँव के लोग मवेशी, चुनमुन खेत-बछार सब पानी की समस्या से जूझ रहे हैं।"[11]

उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट होती है कि भौरापाट गाँव का ठेकेदार शिवनाथ छतीसगढ़ से रायपुर जिले तक बहने वाली नदी को बहुराष्ट्रीय कंपनी को बेच देता है। कंपनी द्वारा नदी का निजीकरण कर लिया जाता है। जिससे भौरापाट गाँव के लोगों को अपने खेतें के लिए और अपने पशुओं के लिए जल प्राप्त नहीं होता और उन्हें अपनी प्राकृतिक सम्पदा जल के लिए मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। यह उनके लिए एक बड़ी समस्या बन गई हैं।

शोषण की समस्या : ये आदिवासी जिस क्षेत्र में रहते हैं, बड़ी कम्पनियां उस क्षेत्र की उनकी ज़मीन हथिया कर उसमें अवैध खनन करवाती है। उनकी जमीनों पर ही उनसे मजदूरी करवाई जाती हैं और उनको पूरा मेहनताना भी नहीं दिया जाता है। गांव के सम्पन्न लोग भी इसमें कम्पनियों का साथ देते हैं, जिसे इन पंक्तियों में देखा जा सकता है- "शिवदास बाबा और विधायक जी का यह सोचना कि वेदांग जैसी बड़ी कम्पनी उस इलाके में केवल कटीले तार की बाड़ बन्दी करने नही आयी है। उसे अपने फैक्ट्री के लिए कोयला बीघा अंचल में कई सौ एकड़ जमीन चाहिए।"[12]

इस उदाहरण से बताया गया है कि कैसे कम्पनियाँ आदिवासियों से उनकी ज़मीन लेकर उनसे अपनी जमीन पर मजदूरी करवाती हैं और उनको पूरी मजदूरी न देकर उनका शोषण किया जाता है। वह जमीन और मजदूरी दोनों का नुकसान सहते हैं।

चिकित्सा की सुविधा की कमी : वर्तमान समय में प्रत्येक आदिवासी जनजाति के लिए मौसमी बीमारी एक बहुत ही गंभीर समस्या बन गई है। जिसका आज प्रत्येक आदिवासी को सामना करना पड़ रहा है। इनके रहने का मूल स्थान जंगल है, लेकिन वर्तमान समय में विकास के नाम पर उन जंगलों में से कोयला और बॉक्साइट निकाल रहे हैं। अनेक बड़ी-बड़ी कंपनियों को सरकार की ओर से इन संसाधनों को निकालने के कन्ट्रेक्ट दिये जा रहे है। लेकिन जो कंपनियाँ वहाँ बॉक्साइट और कोयला निकाल रही हैं। उन्हें निकालने के बाद जो गड्ढे बने हैं, उन्हें भरने में न कंपनी आगे आती है न ही सरकारें आगे आती है। उन गड्ढों में बारिश का पानी भर जाने से वहाँ डेंगू, मलेरिया जैसी बहुत सारी बीमारियों का जन्म होता है। जो उन आदिवासियों के लिए हानिकारक हैं। इसका उदाहरण उपन्यास की निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है- "हमारे होश में चार दर्जन से ज्यादा नई उम्र की लड़कियाँ माता बुखार से मर गई। बूढ़े गुजर की तो उम्र बीत गई थी तो गिनती ही नहीं की। हमारे सुख से इनको क्या, उनको तो अपने मुनाफे से मतलब है।"[13]

उपन्यासकार ने यहाँ स्पष्ट किया है कि इन बीमारियों से असुर समाज आज भी लड़ रहा है। इन लोगों को ऐसा लगता है कि सरकारें इन्हें खत्म करना चाहती हैं। चिकित्सा की असुविधा का एक और उदाहरण इस प्रकार है- "जब लालचन को मुंडीकटवा घायल कर देते है, तो उनका इलाज मास्टर साहब के घर पर ही किया जाता है। इस बीच गमछी भिगोकर उसने अपने दादा को दिया। लालचन की भी थरथराहट खत्म हुई वह थोड़े निश्चिंत लगे। सिर से रिस रहा खून चेहरे पर आ गया। एतवारी ने पुराने कपड़े के टुकड़े को जलाया और राख को सिर के घाव पर रख दिया। खून निकलना बंद हो गया।"[14] यहाँ आज भी चिकित्सा के अभाव को देखा जा सकता है कि असुर आदिवासी ईलाज के पुराने तरीकों पर ही निर्भर है।

शिक्षा के प्रति जागरूकता की समस्या : आज के युग में शिक्षा जीवन का महत्वपूर्ण अंग बन गई है। शिक्षा के बिना जीवन नीरस बन जाता है। भले-बुरे की पहचान करना हमें शिक्षा ही सिखाती है। परन्तु आज भी आदिवासी जनजातियाँ शिक्षा से वंचित हैं। आदिवासी जनजातियों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार न के बराबर है। जिस कारण आदिवासी शिक्षा के प्रति सचेत नहीं है। सरकारी योजनाओं के चलते आदिवासियों के लिए बहुत सारे स्कूल खोले जा रहे हैं। परन्तु उनमें आदिवासी बच्चे नाम मात्र ही होते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में भी इस समस्या को उद्घाटित

किया गया है- "भौरापाट स्कूल आदिवासियों के लिए खोला गया था। किंतु उनमें पढ़ने वाली असुर बच्चियों की संख्या 10% से ज्यादा नहीं है। उनमें ज्यादातर बच्चियों हेडमास्टर और हेडमिस्ट्रेस के गाँव की है।"[15] इसके अतिरिक्त आदिवासियों के लिए बनाए गए स्कूलों में वह सुविधा नहीं है जो बाकी स्कूलों में होती है।

"पाथरपार स्कूल का गेट सामने ही था। स्कूल का इतना बड़ा कैम्पस कि भौरापाट जैसे दो तीन गाँव समा जाए। इन्हीं विशालकाय भवनों में राज्य के सबसे मेधावी लड़के पढ़ते, जिन्हें सबसे अधिक वेतन पाने वाले शिक्षक पढ़ाते।"[16] इसके अतिरिक्तअसुर आदिवासियों के बच्चों के लिए जो स्कूल बने हैं वहाँ असुर जनजातियों के बच्चे तो उस संख्या में नहीं पढ़ते, पर वहाँ उस स्कूलों के अध्यापकों के बच्चों की संख्या ही अधिक होती है। क्योंकि इन जनजातियों में शिक्षा के प्रति जागरूकता का अभाव है। अगले उदाहरण में रचनाकार ने इसे और भी स्पष्ट किया है- "पिछले तीस वर्षों का रजिस्टर उठाकर देख लीजिए जो एक भी आदिम जाति परिवार के बच्चे ने इस स्कूल में पढ़ाई की हो।"[17]

यहाँ आदिवासी लोगों की शिक्षा के प्रति जागरूकता के अभाव को चित्रित किया गया है। गाँव में स्कूल आदिवासी बच्चों के लिए खोला गया है। पर उस स्कूल में पिछले तीस सालों से एक भी आदिवासी बच्चे ने उस स्कूल में से शिक्षा ग्रहण नहीं की थी।

आवास की समस्या : उपन्यास में यह भी बताया गया है कि कैसे असुर आदिवासियों का विकास के नाम पर उन्हें अपने निवास स्थान से भगाया जा रहा है।जिसके कारण उनका अस्तित्व भी खतरे में है। उपन्यास में इस समस्या को इस प्रकार दर्शाया गया है "असुरों के सौ से ज्यादा घरों को उज़ीकर बना था यह स्कूल।"[18] असुरों के घरों को हटा कर उनके लिए स्कूल बनाए गए। परन्तु उन स्कूलों में भी पढ़ने वाले असुरों के बच्चे नाम मात्र भी नही थे। असुर घर से बेघर कर उनको उजाड़ कर कोई दूसरी इमारत का निर्माण किया जा रहा है जिसके कारण उन्हें आवासीय समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जो एक गम्भीर समस्या है।

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि असुर आदिवासी समाज अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझ रहा है। विकास के नाम पर भी उनका शोषण हो रहा है। ईलाज के नाम पर इनके पास कोई सुविधा नहीं है। इनके लिए जो सरकारी योजनाएँ बनती हैं। उन सभी योजनाओं का इन्हें लाभ मिलना चाहिए। रणेन्द्र का इस उपन्यास को लिखने का मुख्य उद्देश्य इनकी समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करवाना है। रणेन्द्र के उपन्यास 'ग्लोबल गांव का देवता' के अध्ययन से यह पता चलता है कि के इसी यथार्थ को विवेचित किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लोक भारती प्रमाणिक हिन्दी कोश, आचार्य रामचन्द्र वर्मा (संपा.) इलाहाबादः लोकभारती प्रकाशन, 1998) पृ.191
2. डॉ. शशिभूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यास की प्रवृतियाँ, (दिल्लीः प्रेम प्रकाशन मंदिर, 2009) पृ. 12
3. नलिन विलोचन शर्मा साहित्य का इतिहास दर्शन (बिहारः राष्ट्रभाषा परिषद, 1960) पृ. 108
4. वही, फ्लैप, पृ.108
5. रणेन्द्र ग्लोबल गांव का देवता (दिल्लीः ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2009) पृ. 12
6. वही, फ्लैप से
7. वही, पृ.62
8. वही, पृ.20
9. वही, पृ.14
10. वही, पृ.24
11. वही, पृ.11
12. वही, पृ.11-12
13. वही, पृ.20
14. वही, पृ.88
15. वही, पृ.35
16. वही, पृ.34
17. वही, पृ.22
18. वही, पृ.30

निर्देशिकाः डॉ. सपना शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग,

गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।

शोधार्थी, हिन्दी-विभाग

गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।

विरुद्ध और रास्तों पर भटकते हुए में चित्रित आधुनिक नारी जीवन

रम्या एस

भारत में आधुनिकता पश्चिम से आयी और भारतीयों ने इसे अपने अनुरूप गठित किया। डॉ नगेंद्र के अनुसार "आधुनिकता का अर्थ व्यापक और गत्यात्मक मानना चाहिए। युगबोध,परंपरा का संशोधन ,जीवन के वैविध्य की स्पृहा,अपने पर्यावरण के माध्यम से आत्मसिद्धि, विकास की आकांक्षा आदि ही उसके सही लक्षण है।"[1]

आज हमारे जीवन का हर क्षेत्र आधुनिकता से प्रभावित है ।साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती,मृणाल पाण्डे आदि उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में आधुनिकता का अलग -अलग रूप प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

आज की नारी शिक्षित है। अब वह पराधीनता के चार दीवारों से बाहर आ गई है। वैज्ञानिक प्रगति,औद्योगिक क्रांति और पाश्चात्य संस्कृति नारी में क्रांतिकारी परिवर्तन लायी हैं। नारी जागरण ने नारी को जागरूक बनाया और विभिन्न व्यवसायों में पदार्पण करके नारी ने आत्मनिर्भरता प्राप्त की है। फिर भी हमारे समाज में नारी सुरक्षित नहीं है। समय की गति के अनुसार नारी को भी नई - नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा हमारे समाज में अनेक ऐसी रूढ़ियाँ और परिस्थितियाँ हैं। जो नारी के विकास में बाधक सिद्ध होती है।अतः आधुनिक नारी को आगे बढ़ने के लिए इन समस्याओं, परिस्थितियों और रूढ़ी -परंपराओं से संघर्ष करना पड़ता है।

मृणाल पाण्डे ने अपने उपन्यासों में आधुनिक और प्राचीन दोनों प्रकार के नारी चरित्रों को उभारने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं के लिए समाज के हर वर्ग से नारी पात्रों का चयन किया है। उनकी रचनाओं में नारी की समस्याओं के साथ उसके जीवन के अभावों और आवश्यकताओं को मुक्त हृदय से व्यक्त किया है। उनकी दृष्टि नारी की अस्मिता के संघर्ष पर टिकी हुई है। इसके बारे में स्वयं मृणाल पाण्डे ने कहा कि "स्त्री की इन तमाम बनी बनायी रूढ़िबद्ध छवियों को नकारकर स्त्रियों द्वारा अपनी अस्मिता का सही खोज शिक्षा और उसके द्वारा आयी जीविकोपार्जन की क्षमता से ही संभव है। यही वह पुल है, जो उसकी वर्तमान अर्द्ध मानव की स्थिति से उसे संपूर्ण मानव के दर्जे तक ले जाकर पुरुष से धीमे -धीमे उसकी सही पहचान स्थापित करा सकता है।"[2] उनके उपन्यासों में आधुनिक नारी के विविध रूप हम देख सकते हैं। जैसे अस्तित्व के लिए भटकती नारी, विवाहिता आधुनिक नारी, काम करनेवाली नारी, प्रेम में असफल नारी, विवाह विच्छेद करनेवाली नारी, पारिवारिक समस्याओं से जूझनेवाली नारी, तनावग्रस्त नारी, समाज की कुरीतियों से संघर्ष करनेवाली नारी आदि।

1983 में प्रकाशित मृणाल पाण्डे का प्रथम उपन्यास है 'विरुद्ध'। इसमें उन्होंने अस्तित्व के लिए भटकती आधुनिक नारी का चित्रण किया है ।उपन्यास की नायिका रजनी उच्च शिक्षित तथा आधुनिक विचारोंवाली है। सारी सुख -सुविधाएँ उपलब्ध होने पर भी वह अपने को संतुष्ट नहीं कर पाती और पति के साथ व्यवस्थित जीवन व्यतीत नहीं कर पाती। पूरे उपन्यास में उदय एक आदर्श पति के रूप में हमारे सामने आता है। लेकिन पति के सामान्य प्रश्न भी उसे चिंतित करने के लिए मज़बूर कर देते हैं।वह सोचती है "आखिर यह सारा आक्रोश भरा आवेग है किसके विरुद्ध? उदय के? अपने? या खुद उन दोनों से परे किसी अलक्षित ताकत के प्रति,जो कि इन मुठभेड़ों के प्रति उसकी सारी वितृष्णा के बावजूद हर रोज़ दोनों को प्रतिद्वंद्वियों की तरह परस्पर चुनौती देने को आमने -सामने ला खड़ी करती है।"[3] माँ का घर जाने पर वहाँ भी उसका मन नहीं लगता है। वह अपनी माँ के समान आदर्श पत्नी या बहन के समान प्राक्टिकल बनना नहीं चाहती है। वह परंपरागत नायिका स्वरूप से अपने को अलग करना चाहती है।

लेकिन इस परिश्रम में वह पराजित हो जाती है ।उसके पति के शब्दों में "जब तक तुम अपनी इस नकली हीनभावना से नहीं छूटोगी,तुम किसी तरह स्थिर नहीं हो

पाओगी चाहे अपने बारे में या दूसरों के साथ।"[4] रजनी के इस आंतरिक द्वन्द्व में न तो समाज में कोई बदलाव ला पाती है और न अपनी स्थिति में परिवर्तन।

'विरुद्ध' उपन्यास में आधुनिक नारी का प्रेमिका रूप भी हम देख सकते हैं ।रजनी की बहन बिल्लो का चित्रण उपन्यासकार ने इसी तौर पर किया है ।बिल्लो सोमेन्दु से प्यार करती है।लेकिन जब उसे पता चल जाता है कि सोमेन्दु को हर औरत में एक सफेद फिरंगिन की तलाश है तो वह उसे छोड़कर नरेश से शादी कर लेती है ।इसका मतलब यह है कि आधुनिक नारी जानबूझकर कपट प्रेम जाल में फँसना नहीं चाहती है।

'रास्तों पर भटकते हुए' में मृणाल पाण्डे ने स्त्री पत्रकार की निरंतर कठिन होती जा रही भूमिका को समझाने की कोशिश की है।आधुनिक विचारोंवाली नायिका मंजरी स्वय एक पत्रकार है।समस्याओं से जूझनेवाली एक साहसी नारी के रूप में वह इस उपन्यास में आती है। अलग -अलग कारणों से उसको अपना वैवाहिक जीवन छोड़ना पड़ा ।लेकिन वह कभी विवाह की असफलता से घबराती नहीं, अपितु आपसी तनाव से मुक्तिपाने के लिए स्वयं विवाह - विच्छेद कर लेती है। मंजरी के शब्दों में "विवाह - विच्छेद उसकी,मेरी उन सबकी एक अनिवार्य नियती थी। कहीं मेरे भीतर उस तलाक कानून के लिए कृतज्ञता का भाव है, जिसके एक वार ने एक दमघोंट नरकीय जीवन से मेरी गर्भनाल काटी और मुझे आज़ाद कर दिया।"[5] वह पुनर्विवाह नहीं करती है।अकेले ही जीवन व्यतीत करती है । इसप्रकार आधुनिक नारी का साहस हम मंजरी मे देख सकते हैं।

बंटी नामक साढ़े सात साल का बच्चा मंजरी के जीवन में प्रवेश करता है।अचानक एक दिन बंटी की हत्या हो जाती है। इकलौते बेटे की मृत्यु पर माँ की चुप्पी मंजरी को इस मृत्यु के तह तक जाने को विवश करती है इस कारण से उसकी जान भी खतरे में पड़ जाती है। अंत में वह जानती है कि इन सबके पीछे शांतिस्वरूप नामक एक वरिष्ठ राजनीतिज्ञ का हाथ है साथ ही उसके रिश्तेदार भी इसमें शामिल है। यह उसके लिए एक बहुत बड़ा धक्का था। फिर भी वह हार नहीं मानती है। वह सधैर्य आगे बढ़ती है। इसप्रकार पूरे उपन्यास में मंजरी वैयक्तिक्र जीवन से, कर्मक्षेत्र से और न्याय के लिए लड़नेवाली आधुनिक नारी के रूप में हमारे सामने आती है।

'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास का और एक आधुनिक नारी पात्र है मंजरी की भाभी जो उच्चवर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। उपभोक्तृवादी संस्कृति के उपज के रूप में वह पूरे उपन्यास में आती है। उसमें ममता कम और स्वार्थता अधिक थी। शादी के बाद वह माँ और बहन को अपने पति से अलग करती है। जब मंजरी की माँ अस्पताल में थी तो उसका कहना है कि "इस महँगे निजी अस्पताल में हमारी माँ के आई. सी . यू में रहने की दैनिक कीमत करीब बीज़ हज़ार ठहरेगी। शी इज़ जस्ट ए वेजिटेबिल, डॉक्टर सेज, उसने अर्थ भरे ढंग से जोड़ा था।"[6] माँ की मृत्यु के समय भी वह अस्पताल में नहीं आती है। इसप्रकार 'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास की भाभी एक हृदयहीन पात्र के रूप में उपन्यास में आती है।

मृणाल पाण्डे ने अपने उपन्यास में समाज के हर वर्ग से नारी पात्रों का चयन किया है। स्वयं एक पत्रकार होने के कारण उनके नारी पात्रों में समाज का सच्चा चित्रण हम देख सकते हैं। उनके अधिकांश नारी पात्र संघर्ष करते हुए दिखई देते हैं ।वे हार नहीं मानती हैं। सधैर्य आगे बढ़ती है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. निर्मल वर्मा का कथा साहित्य -डॉ रघुनाथ शिरगाँवकर - पृ.सं -57
2. मृणाल पाण्डे के रचना संसार-अर्चना शुकला-पृ.सं-29
3. विरुद्ध -मृणाल पाण्डे -पृ सं-9
4. वही - पृ -49
5. रास्तों पर भटकते हुए- मृणाल पाण्डे -पृ सं -33
6. वही - पृ -48

मार्ग दर्शक : **डॉ उषा कुमारी के पी**
प्रोफेसर हिन्दी विभाग, महात्मागाँधी कॉलेज
तिरुवनंतपुरम

शोध छात्रा
हिन्दी विभाग, महात्मागाँधी कॉलेज
तिरुवनंतपुरम

'ज्यों मेहंदी को रंग' और 'भैरवी' उपन्यासों में अभिव्यक्त दिव्यांगों की समस्याएँ : एक तुलना

सोजा एस ओ

शोध सारः दुनिया भर में दिव्यांगों को मुख्याधारा में लाने के लिए काफी बेहतर काम हो रहे हैं, लेकिन भारत में अभी भी दिव्यांगों की जिंदगी बहुत दर्द भरी है। इस समाज ने उनपर दिव्यांग नाम का लेबल चस्पा कर दिया है और वे आज भी उसी लेबल के साथ एक दोयम दर्जे की जिंदगी जीने को मज़बूर हैं। इनके संघर्षपूर्ण जीवन को वर्तमान साहित्य में उकेरने का प्रयास हिंदी साहित्यकारों ने किया है। यहाँ मैंने हिंदी के दो लेखिकाओं के उपन्यासों की तुलना करने का प्रयास किया है। मृदुला सिंहा का उपन्यास 'ज्यों मेहंदी को रंग' और शिवानी का उपन्यास 'भैरवी' दोनों दिव्यांग चरित्र प्रधान उपन्यास हैं। इस प्रकार के अध्ययन का उद्देश्य यह है कि दिव्यांगों पर होनेवाली समस्याओं का अध्ययन करना तथा उनमें अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा जगाना है।

मूल शब्दः सामाजिक समता, कर्मठ, गेरुआ, स्त्रीवादी, संवेदनशीलता, पितृ सत्तात्मक व्यवस्था, प्रजनन क्षमता।

प्रस्तावनाः साहित्य में प्राचीन काल से ही दिव्यांगता का आविर्भाव हुआ है। यह निर्विवाद है कि दिव्यांगता की स्थिति आदिकाल से लेकर आज तक देखने को मिलती है। साहित्य में इसका आविर्भाव प्राचीन ग्रंथों, धर्म ग्रंथों, ऋषि मुनियों, संतों आदि के द्वारा प्राचीन काल से ही हुआ है। मानवीय सभ्यता के आरंभ से ही दिव्यांगों के प्रति सम्मान, आत्मीयता, प्रेम सद्भाव, समभाव, मानवीयता, आदर भाव आदि की प्रमुखता रही है। दिव्यांगों को आत्मनिर्भर बनाकर सामान्यों जैसा जीवन जीने के लिए प्रेरित करने का दायित्व समाज तथा साहित्यकारों का है। समाज में दिव्यांगों को अनेक प्रकार की व्यवहारिक, सामाजिक और शारीरिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सकलांग समाज दिव्यांगों को बड़ी मुश्किल से पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर पर स्वीकार करता है। इसके कारण सामाजिक समावेश प्रभावित होता है। हमारे समाज में विकलांगता को दिव्यांगता के रूप में नहीं वरन् एक कलंक के रूप में देखा जाता है। दिव्यांगों के प्रति समाज का नकारात्मक रुख दिव्यांगों के जीवन को कठिन कर देता है।

हिंदी जगत की सुविख्यात मृदुला सिन्हा जी नारी अस्मिता और समाज सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित करने वाली लेखिका है। मृदुल जी द्वारा रचित उपन्यास ज्यों 'मेहंदी को रंग' दिव्यांगता पर आधारित लिखा गया हिंदी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। अपने पुत्र परिमल की दिव्यांगता के कारण उनके साथ भोगे हुए यथार्थ का वास्तविक चित्रण इस उपन्यास में किया है। लेखिका ने परिमल के स्थान पर शालिनी को आरोपित करके मुख्य नायिका बनाई है। शालिनी स्वाभिमान का जीवंत स्वरूप है। वह पति और ससुराल वालों की उपेक्षा से भीतर ही भीतर घुलती हुई दिव्यांगता का दंश झेलती हैं और जब उसे पता चलता है कि उसके पति ने दूसरा विवाह कर लिया है तब वह उस घर से नाता ही तोड़ देती है। जिस संस्थान ने उसे नवजीवन दिया उसके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करती हुई उसने उसी मंदिर में सेवा व्रत लेने का सुनिश्चय किया।

इसी प्रकार हिंदी साहित्याकाश में शिवानी जी ने अपनी विभिन्न अनुभूतियों को यथार्थ रूप में अभिव्यक्तकिया है। अनेक प्रकार के दिव्यांग चरित्र शिवानी जी के कथा साहित्य में देखने को मिलते हैं। प्रमुख रूप से शारीरिक और मानसिक दिव्यांगता अधिक मात्रा में देखने को मिलती हैं। उनमें कुछ चरित्रों की दिव्यांगता घटनाजन्य है तो कुछ की आकस्मिक है। शिवानी जी द्वारा लिखित उपन्यास 'भैरवी' की चंदन एक दिव्यांग स्त्री है। उसको रेल दुर्घटना के कारण कई दिनों तक बिस्तर पर पड़ा रहना पड़ता है। उसकी यह दिव्यांगता आकस्मिक है। उसका चरित्र दो रूपों में देखने को मिलता है। एक अपरूप, अतुलनीय, सौंदर्यशालिनी युवती 'चंदन' और दूसरा संन्यासिनी गेरुए वस्त्र धारिणी भैरवी का।

'जो मेहंदी को रंग' उपन्यास में दिव्यांग पात्रों के जीवन संघर्ष, उनकी समस्याओं एवं चुनौतियों को यथार्थ रूप से उजागर किया तथा दिव्यांगों को सामाजिक समता एवं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होकर जीवन जीने की राह दिखाता है। साथ ही साथ सामाजिक समता के लिए संघर्ष

करने को प्रेरित करता है। लेकिन 'भैरवी' उपन्यास की चंदन के साथ गुंडों द्वारा किया जाने वाला अत्याचार और अपनी हवस का शिकार बनाने का प्रयास किया है। उस नव विवाहिता चंदन को केवल दिव्यांग ही नहीं बनाता बल्कि जिंदगी भर के लिए उसे भैरवी बनकर रहने के लिए भी विवश कर देता है। समाज की ऐसी क्रूरता पर लेखिका ने क्रुद्ध होकर चंदन के प्रति अपनी संवेदनाओं को व्यक्त किया है। शिवानी ने अपनी रचनाओं में दिव्यांगों के प्रति करुणा, आत्मीयता और संवेदनशीलता को अभिव्यक्तकिया है।

'जो मेहंदी को रंग' में लेखिका ने शालिनी को परिवार में सभी की चहेती दर्शाया है। परंतु जब वह पैर से निशक्त हो जाती है तो उसके परिवार वालों का व्यवहार परिवर्तन भी दर्शाया है। "स्टीमर से उतरते वक्तशालिनी की दोनों टांगें कट भर जाने से उसकी इच्छाएँ - आकांक्षाएँ तो खत्म नहीं हुई थीं, पर पूरा शरीर तो पडा ही था"[1]। अस्पताल में पड़ी शालिनी के साथ किसी को संवेदना नहीं होती, बल्कि सभी उसके पति राजेश के प्रति ही सहानुभूति दिखाते हैं। उसकी सांस कहती है, "हाय,गंगा मैया कौन-सा कसूर किया था, मेरे बेटे ने"[2]। शालिनी उच्च आदर्श की प्रतिरूप बनकर अपने पति को दूसरे विवाह की सलाह भी देती है, पर उसका पति खोखले आदर्श की प्रतिमा बनकर इस प्रस्ताव को ठुकरा देता है। परंतु शालिनी अपने परिवार की उपेक्षा को देखकर अपने आपको संस्था के प्रति समर्पित कर देती है। वह संस्था के प्रधान डॉ. अविनाश के साथ मिलकर संस्था में आनेवाले दिव्यांग जनों की सेवा में अपना जीवन बलिदान करने की प्रतिज्ञा लेती है। संस्था में आकर शालिनी का नया जीवन शुरू होता है। दद्दाजी दिव्यांग संस्थान के मुखिया है। इन्होंने शेष जीवन और तन-मन-धन सर्वस्व इस संस्थान को समर्पित कर दिया है। अपाहिज कहकर उपहास उड़ाने वालों के प्रति इनका आक्रोश उमड़ पड़ता है- "मेरे सामने इन्हें अपाहिज मत कहो। सारी दुनियां अपाहिज है शर्मा.....सारी दुनियां! बड़ी द्रुतगति से भागता- चलता हृष्ट- पुष्ट व्यक्तिभी अपंग है, शर्मा!उसकी भावनाएँ तो अपंग है न, कुंठित है और शारीरिक अपंगता से नैतिक अथवा सांवेगिक अपंगता ज्यादा खतरनाक है, शर्मा! शारीरिक दिव्यांगों को यह दुनिया सही ढंग से देखती नहीं। शारीरिक अपंग व्यक्ति अपने लिए बेकार होता है। लेकिन ये सांवेगिक अपंग लोग तो दूसरों को बेकार बनाते हैं, सारे समाज को पंगु बना बैठते हैं। सारा समाज पंगु है"[3]। इसी प्रकार 'भैरवी' उपन्यास में विक्रम के साथ विवाह के पश्चात जब एक रेल दुर्घटना के कारण अपने पैरों की शक्तिखोकर एक अघोरी भैरवानंद के आश्रय में उसे शरण लेना पड़ता है। लेकिन अघोरी भैरवानंद की नैतिकता में आए हुए परिवर्तन के कारण वहाँ से भाग जाती है। वह अपने ससुराल पहुँचती है तो सर्वप्रथम अपने पति विक्रम को देखकर कहती है, "मैं जानती थी, तुम्हें देख लूंगी, बाबा की मजार पर डोरी जो बांध आई थी"[4]। लेकिन उसका पति दूसरे विवाह बंधन में बंध चुके हैं। इतना ही नहीं तो एक बेटे का पिता भी बन चुका है। वह चंदन को उसे स्थिति में स्वीकारने को भी तैयार नहीं है। बेघर तथा बेसहारा चंदन को फिर से दर-दर भटकना पड़ता है।

उपन्यासकार ने शालिनी के रूप में एक ऐसी चरित्र की सृष्टि की है, जिसमें विषम परिस्थितियों से दो- दो हाथ करने की क्षमता है। खंडित होकर पुनः संगठित होने की शक्तिहै। कहना न होगा कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियों के जीवन के जिन पहलुओं पर पुरुषों का वर्चस्व होता है। उनमें सबसे महत्वपूर्ण पक्ष स्त्री की प्रजनन क्षमता है। इस दृष्टि से दिव्यांग स्त्री को दोहरी उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। स्त्री को एकमात्र संतानोत्पत्ति का साधन माननेवाली यह पुरुषवादी मानसिकता दिव्यांग स्त्री से विवाह करने से इसलिए कतराता है। क्योंकि उसकी दृष्टि में उसकी यौनिकता नगण्य है, वह दिव्यांग पहले है और स्त्री बाद में। कहीं न कहीं उनकी सोच में यह रूढ़ीवादी भय घर किए रहता है कि शारीरिक रूप से अक्षम स्त्री गृहस्थ जीवन का निर्वाह भली- भांती नहीं कर सकती है तथा उससे उत्पन्न होने वाली संतान भी दिव्यांग ही होगी, जिस के लिए पुरुष नहीं वरन स्त्री ही जिम्मेदार है।

दिव्यांग होने से पूर्व शालिनी का पति उसे अपार प्रेम करता है। परंतु दिव्यांग होने पर उसका वही प्रेम घृणा और उपेक्षा में बदल जाता है। उसी प्रकार चंदन को भी दिव्यांग स्थिति में ससुराल द्वारा उसे न स्वीकारती है। 'चंदन' एक अपरूप, अतुलनीय सौंदर्य की धनी थी। दुर्भाग्य से वही सौंदर्य उसे घर से बेघर करता है। प्रायः यह देखा गया है कि दिव्यांग पुरुषों की तुलना में दिव्यांग स्त्रियों को अधिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। 'ज्यों मेहंदी को रंग' उपन्यास में डॉ.अविनाश की पत्नी उन्हें वापस अपने साथ इंग्लैंड चलने का प्रस्ताव रखती है, जिसे वे अस्वीकार कर देते हैं। वहीं शालिनी की स्थिति इसके विपरीत है, न तो उसका पति उसकी खबर ही लेता है और

न ही घर वापसी का कोई प्रस्ताव ही उसे मिलता है। वह इस जीवन संग्राम में निरा एकांगी है। उसी प्रकार चंदन को भी दिव्यांग स्थिति में स्वीकारने को तैयार नहीं होता है। उसकी मन बेचैन होकर सोचने के लिए विवश होता है कि यह समाज कितना क्रूर है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि दिव्यांगों को समाज में कभी-कभी उपेक्षा का जीवन जीना पड़ता है तो कभी-कभी उनके प्रति सहानुभूति भी जताई जाती है। इसलिए दिव्यांगों के सुधार की उपेक्षा उनकी मानसिकता को समझना बहुत महत्वपूर्ण होता है। दिव्यांगों को सामाजिक समस्या के साथ-साथ शारीरिक, मानसिक और पारिवारिक समस्या से भी गुजरना पड़ता है। दोनों लेखिकाओं के उपन्यासों में इन सारी समस्याओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। लेकिन वैषम्य यह है कि मृदुला सिन्हा जी ने 'ज्यों मेहंदी को रंग' उपन्यास में भोगे हुए यथार्थ का चित्रण किया है। मृदुला जी का उपन्यास शारीरिक रूप से अक्षम लोगों की मानसिकता, उनकी बौद्धिकता, उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ-साथ शारीरिक रूप से सक्षम लोगों की मानसिकता को भी हमारे समक्ष रखता है। इनके अंतर को हम इस उपन्यास में बड़ी गहराई से अनुभव कर सकते हैं। उपन्यास के दिव्यांग पात्र कहीं भी दयनीय, असमर्थ और बेचारे नहीं है, अपितु इस स्थिति में भी वे संतुष्ट, कर्मठ, ईमानदार और अपने विशिष्ट गुणों के कारण सम्मान के पात्र हैं, उनका चरित्र अनुकरणीय और सराहनीय है। स्वानुभूति से भरपूर इस उपन्यास में दिव्यांगों की मानसिकता में परिवर्तन की राह दिखाता है। साथ ही साथ सामाजिक समता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा भी देती है। लेकिन शिवानी जी ने 'भैरवी' उपन्यास में दिव्यांगों पर होने वाली समाज की क्रूरता पर क्रुद्ध होकर अपनी संवेदनाओं को व्यक्त किया है। इस उपन्यास में दिव्यांगों के प्रति सहानुभूति का चित्रण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मृदुला सिन्हा, जो मेहंदी को रंग, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ. सं. 49
2. वही, पृ. 50
3. वही, पृ. 32
4. शिवानी, भैरवी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1006, पृ. 120

शोध छात्रा, हिंदी विभाग
कार्यवट्टम कैंपस, केरल विश्वविद्यालय

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. 'आराधना' किसकी काव्य कृति है?
2. मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है- किस नाटक की पंक्ति है?
3. 'मशाल' किसकी औपन्यासिक कृति है?
4. 'बनारस अखबार' के विख्यात संपादक कौन है?
5. 'उदंत मर्तण्ड' खडीबोली को किस नाम से उल्लेख किया गया है?
6. साहित्य अकादमी की स्थापना किस वर्ष हुई थी?
7. 'सहजता के कवि' के नाम से विख्यात कवि कौन है?
8. वैर क्रोध का आचार या मुरब्बा है - किसके कथन है?
9. भारतेंदु के संबंध में 'कविता में उनका संस्कार है, हृदय में विचार' - किसने कहा?
10. सचेतन कहानी आंदोलन के प्रवर्तक कौन है?
11. लल्लु लाल ने लतायफ-इ-हिंदी को किस नाम से पुकारा?
12. सृजन की थकन भूल जा देवता - अभी तो पड़ी है धरा अधबनी - किसकी पंक्तियाँ हैं?
13. 'प्रेमकली' किसकी रचना है?
14. 'तक्षशिला' किसका काव्य ग्रंथ है?
15. 'जकी' उपनाम किसका रहा?
16. 'ग्रामगीत' किसका काव्य ग्रंथ है?
17. 'पूर्व मीमांसा भाष्य' किसका ग्रंथ है?
18. निंबार्क संप्रदाय में 'हितू सखी' का अवतार किसे माना जाता है?
19. असाइत कृत 'हंसावली' का रचनास्रोत क्या है?
20. 'नबाब राय' के नाम से प्रेमचंद जी की प्रथम कहानी कौन सी है?

उत्तर : पृष्ठ 45 में

समकालीन हिंदी कविता में उपभोक्तावादी समाज की विडंबनाएँ

बिजिना टी

मनुष्य के दैनिक जीवन के लिए आवश्यक पदार्थों का उत्पादन उचित मात्रा में हो सकता है। लेकिन आवश्यकता से बढ़कर जब उत्पादन में वृद्धि होगी तब मनुष्य उन पदार्थों का अनावश्यक उपभोग केलिए विवश हो जाएगा। अति लाभेच्छा के मोह में पूँजीवादी मानसिकता ने उत्पादन बढ़ाया। मुनाफाखोर पूँजीवादी व्यवस्था प्राकृतिक संसाधनों का निरंतर शोषण करती रही। ऐसे मनुष्य के दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक प्राकृतिक स्रोतों जैसे खेती, चरागाह, वन एवं समुद्र का बड़ी तादाद में शोषण होने लगा। उत्पादन की बिक्री बढ़ाने केलिए आर्थिक व्यवस्था ने नई-नई युक्तियाँ अपनाई। इसके फलस्वरूप विश्व में एक नया संस्कार निर्मित हुआ- भोगो, फेंको साथ भूल जाओ वाला संस्कार। इस प्रकार औद्योगीकरण एवं उपभोग संस्कृति में प्राकृतिक संसाधन ना के बराबर हो गया साथ फालतू पदार्थों से पर्यावरण प्रदूषण उतना बढ़ गया कि जैव विविधता असंभव-सा हो गया है। सुन्दरलाल बहुगुणा के शब्दों में अब तो हमारी सभ्यता ने हमें असीमित भोगलिप्सा का पुतला बनाकर धरती का कसाई बना दिया है। हम उसके साथ क्या-क्या नहीं कर रहे हैं? खनिज और धातुओं को निकालने के लिए जिनके बिना आज का सभ्य इंसान एक क्षण भी नहीं जी सकता, मीलों अन्दर खनन, पेड़-पौधों को काटकर धरती की चमड़ी उधेड़ और भीमकाय बाँध बनाकर उसे डुबोना हमेशा केलिए मृत कर देना। धरती के साथ बलात्कार की इन गतिविधियों में अमीर लोग सबसे आगे खड़े हैं। "हमारा साँझा भविष्य' रिपोर्ट के अनुसार विश्व के जनसंख्या के सबसे अधिक धनी 27 प्रतिशत लोग अस्सी से लेकर छियासी प्रतिशत तक अनवनीकृत संसाधनों और चौंतीस से लेकर पचास प्रतिशत तक खाद्य वस्तुओं का उपभोग करते हैं।"[1] विज्ञान और टेक्नालॉजी की दृष्टि से एक ओर मनुष्य की जययात्रा चल रही है तो दूसरी ओर भोगवादी संस्कृति में मनुष्य की दुरितयात्रा भी ज़ारी है। प्रकृति मनुष्य केलिए वरदान है, वह कामधेनु है पर मुनाफे की दुनिया में उस धेनु का थान ही लोग काट देते हैं। वैश्विक दुनिया में हर चीज़ की कीमत पूछी जाती है। मूल्यवादी दृष्टि समाप्त हो रही है। सब मार्केट की वस्तु के रूप में परिणित हो रही है। क्योंकि "प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के बिना उपभोक्तावाद का काम नहीं चलता है।"[2]

आज के साम्राज्यवादी एवं पूँजीवादी शक्तियों ने वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी विकास के नाम पर धरती को विषैली बना दिया है। पूँजीवादी विकास के नाम पर कॉर्पोरेट संस्थाएँ प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और व्यापार करके अपने मुनाफे के लिए उन पर अधिकार स्थापित करना चाहती है। अंतः साम्राज्यवाद का लक्ष्य हमारे सभी बंधनों को तोड़कर खुला बाज़ार बनाना है। इस सन्दर्भ में रामदरश मिश्र की एक कविता विचारणीय है- "हर एक की टोपी के नीचे एक गिद्ध छिपा है/हर-एक दूसरे के गिद्ध को ललकारता है/और सबके गिद्ध मिलकर बस्ती पर मँडरा रहे हैं।"[3]

यहाँ साम्राज्यवादी गिद्ध चौबीस घंटों हमारे उपर नज़र रखा गया है। उनका एकमात्र लक्ष्य बाज़ार लोकतंत्र है। इसके द्वारा राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था में एक नया माहौल तैयार करते हैं। पूँजीवादी सभ्यता समाज में मानव को प्रकृति के प्रति एक अलग रवैए से सोचने के लिए मज़बूर करती है। यही मज़बूरी कभी-कभी मानव मन में प्रखर हो जाती है, और यही प्रखरता प्रकृति के विरुद्ध भी कभी-कभी बदल जाती है। पूँजीवादी सभ्यता मानव और प्रकृति के बीच में भले ही आ गई है। किन्तु संवेदनशील मानव आज भी प्रकृति से अपना लगाव महसूस करता है। प्रकृति को अपने जीवन तथा परिवेश का अंग माननेवाला संवेदनशील हृदय यह कैसा बर्दाश्त कर सकता है कि कोई षड्यंत्र उसके प्राकृतिक परिवेश को उजाड़ बना दे किन्तु पूँजीवादी की अपनी चाल होती है, ज़माने के दुःख-दर्द से उसे कोई चिंता नहीं है। यहाँ हर कहीं षड्यंत्र हैं। मानव के साथ षड्यंत्र, प्रकृति के साथ भी षड्यंत्र है। समकालीन कवि अरुण कमल अपना क्षोभ इस प्रकार व्यक्त करता है कि - "षड्यंत्र/गंगा के साथ भी षड्यंत्र/हिमालय के साथ/पृथ्वी-नक्षत्र समस्त मंडल के साथ"[4]

भारत के एक वर्ग जंगल, ज़मीन, जल आदि को बचाने के लिए आन्दोलनरत हैं तो दूसरे वर्ग पानी जैसे प्राकृतिक संसाधनों को बिकाउ चीज़ के रूप में बदलने केलिए आतुर है। पानी आज के बाज़ार की बिकाउ चीज़ हो गयी है। कवि एकांत श्रीवास्तव बताते हैं कि जिसके पास पैसे हैं उसके पास पानी है। आज के अमीर लोग अपने अधीन के जलस्रोतों से मिनरल वाटर का निर्माण कर बाज़ार में उसे बेचते हैं। उसके मन में पैसा कमाने की चिंता मात्र ही है, जलस्रोत नष्ट होने की चिंता नहीं है। पानी के बाज़ारीकरण की प्रक्रिया का विरोध करते हुए कवि कहते हैं- "अगर आपके पास पचास पैसे हैं/तो आप एक गिलास ठण्डा पानी पी सकते हैं"[5]

आज के लोग व्यावसायिकता के नाम पर पानी को बेच रहे हैं। कवि केदारनाथ सिंह अपनी कविता 'पानी की प्रार्थना' में बताते है कि आज का समय बाज़ारों का है। इसमें प्रकृति-प्रदत्त संसाधन बिकने की वस्तु मात्र रह गयी है। यह बाज़ारों का समय होने के बावजूद भी पानी किसी रहस्यमय स्रोत से किसी न किसी रूप में हमेशा मौजूद होगा। कवि के शब्दों में - "पर चिंता की कोई बात नहीं/ यह बाज़ार का समय है/और वहाँ किसी रहस्यमय स्रोत से/ मैं हमेशा मौजूद हूँ"[6]

आज नदियाँ किसी मल्टी नेशनल कंपनी के अधीन हैं। हमारे राष्ट्रीय धरोहर नदी को एक प्राइवेट प्रोपर्टी के रूप में देखना एक संवेदनशील कवि के लिए मुश्किल है। 'पानी बेचनेवाले की गुहार' नामक कविता में कवि केदारनाथ सिंह ने पानी बेचनेवालों को ईश्वर कहकर व्यंग किया है। विनय कुमार पटेल के अनुसार "समकालीन समाज का सत्य है पूँजीवाद साथ उपभोक्तावाद। मरती हुई संवेदना, दम तोड़ती मनुष्यता, हिंसा, अत्याचार साथ न जाने ऐसी कितनी बीमारियाँ आज के समाज में मौजूद हैं।"[7] प्राकृतिक संसाधनों पर बाज़ारीकरण का दबाव तीव्र हो गया है। नदी, खेत जैसे पर्यावरणीय तत्व आज बाज़ार में बिकने के साधन बन गए हैं। गाँव के स्थान पर बहुमंजिले इमारतें देख सकते हैं। कवयित्री इन्दु जैन बताती है कि आज नदी एवं खेतिहर बाज़ार की वस्तु होने के कारण उसका प्राकृतिक नियम भी बदल गया है। कवयित्री को बाज़ार से प्राकृतिक नदी को मिलना मुश्किल है। उन्होंने बाज़ार से जिस नदी को खरीद लिया है, उसमें रेत और धूप की पनीली चमक मात्र ही है, पानी नहीं। कवयित्री ने 'नये क़ायदे' नामक कविता में प्राकृतिक संसाधनों पर प्रभावित बाज़ारीकरण पर प्रभाव डाला है। कवि प्रेम शंकर 'पानी का मतलब' नामक कविता में बताते हैं कि आदमी को बचाकर दुनिया को मतलब देना है पानी का मतलब। एक तिहाई भू-भाग के पानी को संरक्षण करना वर्तमान मानव के सामने सबसे बड़ी चुनौती बन गयी है। एक घूँट भर की प्यास को दूर करने में पानी नहीं है, स्थिति इस तरह हो जाये तो बिना पानी के भविष्य की तस्वीर बड़ी भयानक होगी। पानी की वर्तमान एवं भावी दशा के प्रति कवि चिंतित है। कविता के अंत में कवि बताते हैं कि ठंडा मतलब कोका कोला नहीं है। पेप्सी, कोकाकोला जैसे बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत भूगर्भीय जल-स्रोतों का शोषण कर रही हैं। इसका विनाशकारी प्रभाव आज केरल के प्लाच्चिमडा में देख सकते हैं। आज भारत में पानी के बाज़ारीकरण की प्रवृत्ति देख सकते हैं। कवि प्रेमशंकर शुक्ल इसका विरोध करते हैं। "पानी का मतलब/ठंडा मतलब कोका कोला नहीं/प्यास की वर्तनी को/बाज़ार बना देने की प्रवृत्ति के खिलाफ होना है/सख्त खिलाफ"[8]

आर्थिक विकास की अंधाधुन्ध दौड़ में मानव पानी के संरक्षण एवं उसकी गुणवत्ता को नज़र अंदाज़ कर रहा है । 'किस्सा उस तालाब का' नामक कविता में कवि मिनरल वाटर का एक बोतल खरीदकर असमंजस में पड़ जाते हैं। प्रकृति प्रदत्त उपहार पानी को मिनरल वाटर के बोतल से पीना कवि केलिए असहनीय बात है। कवि बताते हैं कि यह पानी पीने से गला तर होकर आत्मा सूख जाती हैं। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं- "और पानी कहता तो गुस्ताखी होती उसकी शान में/पीने से कुछ होठ गीले हुए कुछ गला तर हुआ/पर आत्मा ज़रा भी नहीं भीगी"[9]

यहाँ कवि ने विश्व बाज़ार में होनेवाले मिनरल वाटर के व्यापार का संकेत दिया है। आज राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक कंपनियाँ पानी का व्यापार कर रही है। उनका लक्ष्य सभी जलस्रोतों को दोहन कर अधिक से अधिक लाभ कमाना मात्र है। कवि लीलाधर मंडलोई बताते हैं कि आज की दुनिया के चारों ओर बोतलबन्द पानी मात्र ही है। शुद्ध एवं स्वच्छ पानी मिलने के स्थान पर

आज बोतलबन्द पानी भर गया है। मिनरल वाटर बिकनेवाले लोग दिन-प्रतिदिन पानी में सबसे अधिक मुनाफा कमाते हैं। वास्तव में दुनिया विकल्पहीन हो गयी है। इसकी सही अभिव्यक्तिउनकी 'जान पाते रहस्य हम' नामक कविता में मिलती है।

"इससे पहले कि जान पाते रहस्य हम/दुनिया भरने लगी बोतलबन्द पानियों से/कि इसमें इतना अधिक मुनाफा/और सब विकल्पहीन इतने"[10]

उपभोक्तावादी युग के दौर में प्राकृतिक चीज़ों का केवल उपयोग ही नहीं, बल्कि उपभोग भी हो रहा है। इन सारे प्रदूषणों के प्रमुख कारण हमारे महानगरीय सभ्यता है, जो बड़ी-बड़ी विपत्तियों की सृष्टि करती रहती हैं। इस व्यस्तता भरे जीवन में अनेक खतरनाक चीजों का आविष्कार मनुष्य ने स्वयं किया है। इसमें एक है -'पॉलिथिन'। यह हमारे समय की सभ्यता का प्रतीक माना है। बाज़ार इसकी मुट्ठी में बन्द है। आज गाय का दूध हमें पॉलिथीन थैलियों में मिलते है तो दूसरी ओर हम सुनने लगे कि माँ का दूध भी पैकेट में मिलेंगे। विज्ञापन के चकाचौंध में मानव अपना स्वास्थय का ख्याल नहीं करता। कवि अरु ण कमल अपनी पीढ़ी से कहते हैं कि- "पोलिथिन थैलियों पर जीवित गौवों का दूध हमारे लिए/शहद का छत्ता खाली/हमारे लिए वो हवा फेंफड़े की अंतिम मस्तकहीन धड़/पूर्वजों के सारे रोग हमारे रक्तमें"[11]

ज्ञानेन्द्रपति की कविता संग्रह गंगातट की एक प्रमुख कविता है, 'पॉलिथिन'। इसमें पॉलिथीन से उत्पन्न भयावह त्रासदी की ओर कवि हमारा ध्यान आकर्षित करता है। एक ओर पॉलिथीन सभ्यता का प्रतीक माना जाता है तो दूसरी ओर वह सभ्यता का संकट भी है। हर क्षण पवित्र गंगा में पॉलिथीन का कचरा फेंक दिया जाता है। गंगा नदी में गिरे पॉलिथीन सब प्रकार के प्रदूषण और विध्वंस के हेतु होते हैं और जलजीवों को साँस लेने में अड्चल डालता है। दरअसल इस प्रदूषण तंत्र से गंगा की जलराशी बुरी तरह ग्रस्त है, और उसमें सब कहीं विष है। कवि के अनुसार गंगा माता का मन भी पार्लिथीन के प्रवेश से भारी हो गया है। उसका मानसिक हर्षोल्लास आज रुका हुआ है। "पॉलिथिन ! पॉलिथिन ! /तंग हूँ मैं इस पॉलिथीन से/तंग पड़ती जा रही है जगह जीवों को धरती पर/बीजों को धरती पर /इसके कारण/जिधर देखो उधर पॉलिथिन/पॉलिथिन की मुट्ठी में बंद हैं हम"[12]

कुछ लोग सोचते हैं कि पर्यावरण के दूषित होने का कुप्रभाव केवल मानव जीवन पर ही पड़ता है। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि प्रदूषण से समस्त पर्यावरण तंत्र भी प्रभावित होता है। प्रकृति की सुन्दर नदियाँ पार्लिथिन के प्रभाव से विकृत एवं छिन्न भिन्न हो जाती हैं। पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं पर घातक प्रभाव पड़ता है। जिस तरह बाज़ार की मुट्ठी में बन्द हैं हम, उसी तरह पॉलिथीन की मुट्ठी में बंद है बाज़ार। "करिखाई है गंगा /विषपायी है गंगा/दुखयारी माई है गंगा/उस निर्भर पॉलिथिन पड़ते ही /भारी हो जाता है उसका जी"[13]

पर्यावरण में पॉलिथिन पदार्थों के पैदा होना और एकत्रित होने से जल, वायु और भूमि के दूषित होने से अनेक रोगों का जन्म होता है। ज्ञानेन्द्रपति इस अपशिष्ट पदार्थ के अधिक प्रयोग से तंग आकर कहते हैं कि 'हमारे समय की सभ्यता का दूसरा नाम है पॉलिथीन।' वह चिर जीवा एवं मरजीवा सत्य है।

"चिरजीव मरजीवा पॉलिथीन !/हमारे समय की सभ्यता का पर्याय है/हमारे समय की सभ्यता का दूसरा नाम है, पॉलिथीन/ इसने नियुक्तकिया है कितने ही लोगों को अपनी बेच-खरीद में/और न जाने कितने लोगों को इसने बेरोज़गार किया है/ इसके एजेंट है, उनके पेमेंट हैं/इसके कबाड़ हैं, वहाँ हड़ते हाड़ हैं/पॉलिथीन पूँजीवाद की त्वचा है/

जैव संकट की इस भीषण दशा को दर्शानेवाली 'गंगातट' की निम्न पंक्तियाँ यहाँ विचारणीय हैं- "कल के बच्चे जानेंगे /गाय के दूधगर थनों से नहीं /पार्लिथिन के दूध भर-कि आह दूध हर पैकिटों से आता है दूध"[15]

आज गाय का पालन बहुत कम लोग करते हैं। हमारे घरों में पैकट दूध ही आज मिलते हैं। आज के कई बच्चे गाय से अपरिचित हैं। पार्लिथिन पैकेटों से उन बच्चों को दूध मिलता है। आज ऐसी स्थिति है तो कल बच्चे कहेंगे दूध गाय से नहीं, पार्लिथिन पैकेटों से मिलता है। आज की उपभोक्तावादी संस्कृति पर्यावरण प्रदूषण का कारण बन

गई। पार्लिथिन आज की सभ्यता का तेवर बन गया है। यह विनाशकारी पार्लिथिन जल, मिट्टी, वायू आदि सभी केलिए एक चुनौती बन गया है। पार्लिथिन का उपयोग आज बढ़ रहा है। हर कहीं पार्लिथिन ही दिखाई देता है। घर से लेकर जल तक पार्लिथिन है। बड़े-बड़े शहरों में पार्लिथिन बैग में कूड़े-कचरे, माँस-अवशिष्ट भरकर सड़क पर फेंके जाते है। यह सर्वव्यापी विनाशकारी, चिरजीवा पार्लिथिन संबंधी ज्ञानेन्द्रपति की ये पंक्तियाँ देखिए - "दिखा धारा पर तिरता, जैसे उन्हीं में एक, मन का नेक/एक खाली, फेंका, लिफाफा पार्लिथिन का/पॉलिथीन की समस्या आज के विश्व की एक प्रमुख समस्या बन गयी है। चारों ओर पॉलिथीन की थैलियाँ देख सकते हैं। बहुत आकर्षक पॉलिथीन पर्यावरण एवं मानव केलिए खतरा बना रहता है। आज मानव खाली बोतलों एवं पॉलिथीन की थैलियों से सुन्दर-स्वच्छ पृथ्वी को चन्द सालों से कूड़ाघर बना दिया है। फेंकी हुई पॉलिथीन के अपशिष्ट तालाब जैसे जलस्रोतों में पहूँचकर जल-भराव की समस्याएँ पैदा करती हैं। इससे जलस्रोतों में पानी कम होकर तेज़ी से सूखने की स्थिति पैदा होगी। कवि गोविन्द मिस्र ने 'पैसेवाले सैलानी' नामक कविता में लिखा है- "फिकने लगे टिन के डिब्बे/खाली बोतलें /पॉलिथीन के थैले/सुन्दर जगह को भी वे /चंद सालों में बना देंगे /कूड़ाघर"[17]

मानव ने प्लास्टिक जैसी कभी न गलने वाली चीज़ों को बनाकर प्रकृति केलिए दुर्वह बोझ पैदा कर दिया है, क्योंकि इसका निस्तारण बहुत ही कठिनाई से होता है। यदि जलाकर या किसी अन्य प्रकार से इसे नष्ट करने की कोशिश की जाए तो वह भी पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं को नुकसान पहूँचाता है। इस सच की स्पष्ट झलक निम्नलिखित पंक्तियों में देखने को मिलती है- "नश्वर आदमी ने प्लास्टिक जैसी यह कैसी अमर चीज़ /को पैदा कर दिया कि पल्ले पड़ गया दुर्वह बोझ"[18]

आज बाज़ार में प्लास्टिक के फूलों का बाग भी है। मानव अपने घर के प्राकृतिक उद्यानों के स्थान पर इसे स्थापित करते हैं। रामदरश मिस्र 'फूल' नामक कविता में बताते हैं कि इसको न मिट्टी, न खाद और न पानी चाहिए। चिड़ियाओं से रखवाली एवं मौसम के इंतज़ार के बिना ये फूल पर पड़नेवाले बाज़ारीकरण के दबाव को प्रस्तुत किया है। इससे हवा फूलों की गंध, मधुमक्खियों रस एवं तितलियाँ उनके कोमल स्पर्श से वंचित हो गयी है। कवि बताते हैं कि आज के बच्चे प्राकृतिक नियमों के अनुकूल हो रहे परिवर्तनों से भी अपरिचित है। कवि के शब्दों में- "बच्चे फूल की पहचान से वंचित हो गए"[19]

आज के युवा पीढ़ी प्राकृतिक फूलों के अलावा प्लास्टिक के फूलों से अधिक परिचित है। कवि कविता के अंत में बताते हैं कि प्लास्टिक उद्यान देखकर अनेक मौसम उदासीन होकर गुज़र गए हैं। इस प्रकार उपभोक्तावाद का प्रभाव हमारे समाज, संस्कृति के साथ-साथ व्यक्ति के अंतर्मन को भी प्रभावित करता हैं। व्यक्ति भूल गया है कि हमें क्या पसंद है या नहीं। पूरा संसार भी इसके चपेट में फंस गया हैं।

संदर्भ

1. धरती की पुकार, सुन्दरलाल बहुगुणा, पृ.सं.64
2. प्रकृति पर्यावरण और समकालीन कविता , मनीषा झा, पृ.सं.115
3. हम कहाँ हैं-दिन एक नदी बन गया है , रामदरश मिश्र, पृ.सं.493
4. अपनी केवल धार, अरुण कमल, पृ.सं.64
5. बीज से फूल तक, एकांत श्रीवास्तव,पृ.सं.44
6. केदारनाथ सिंह, तालस्ताय और साइकिल,पृ.सं.11
7. वसुधा-विनय कुमार पटेल, भोपाल (म.प्र.) अंक 84, जनवरी, मार्च, 2010, पृ.सं.225
8. समकालीन भारतीय साहित्य, नवंबर-दिसंबर, 2009, पृ.सं.163
9. चाँद की वर्तनी, राजेश जोशी, पृ.सं.26
10. लीलाधर मंडलोई, काल बाँका तिरछा , पृ.सं.89
11. पुतली में संसार, अरुण कमल, पृ.सं.45
12. गंगातट, ज्ञानेन्द्रपति, पृ.सं.95
13. गंगातट, ज्ञानेन्द्रपति,पृ.सं.96
14. गंगातट, ज्ञानेन्द्रपति, पृ.सं.96
15. गंगातट, ज्ञानेन्द्रपति, पृ.सं.91
16. गंगातट, ज्ञानेन्द्रपति, पृ.सं.94
17. ओ प्रकृति माँ, गोविन्द मिस्र, पृ.सं.112
18. चाँद पर नाव, हेमंत कुकरेती, पृ.सं.47
19. रामदरश मिश्र रचनावली-खण्ड-2 . सं.रामदरश मिश्र, स्मिता मिश्र, पृ.सं.237

असिस्टेंट प्रोफसर एवं विभागाध्यक्षा

हिंदी विभाग, कार्मल कॉलेज (स्वायत्त), माला, त्रिश्शूर

यात्राविवरण

मानस कैलास

अनुवाद : प्रो. डॉ. तंकप्पन नायर **मूल : मंजु वेल्लायणि** **अनुवाद : डॉ.रंजीत रविशैलम**

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

मैं आसमान को गले लगाता हूँ। जैसे पंचभूत आसमान को सीने से लगाता है वैसे। मेरा काम खत्म हो गया। जीवन भी समाप्त हो गया। प्राप्त धन खर्च हो जा रहा है। बनाए घर गिरते हैं। मेलमिलाप टूट जाता है। जो जन्म लेता है वह मरता है। मिलरेपा के शब्दों को किसी दर्शन की गंध थी।

अपने 84 वीं उम्र में बुद्ध, स्वयं को तथा शिष्यों को समग्रता से जानकर उसके भजन करने की प्रार्थना के साथ सूर्योदय वेला में उस महायोगी का अस्त हो गया। सर्वाश्लेषी चिर शून्यता में आप स्वयं विलीन हो गए। चिता एक स्वर्गीय भवन बन गई। चिता के नीचे स्वयंज्वलित अग्नि अष्ट पंखुडी पंकज पुष्प सी बन गई। तिब्बतवालों के आराध्य अष्टदलपद्म में कितने ही ऐतिह्य पौराणिक आख्यान समाहित हैं। मीरा एवं खन्ना की बातचीत कैलास एवं चिताभूमि में एक साथ विराजमान महादेव पर हो गई। अतुल की आवाज़ सुनाई नहीं दे रही है। शायद वह सो गया होगा।

शिव का अर्थ शिवपुराण में व्यक्त किया हुआ है। पाँच मंत्रों के सार समाहित दार्शनिकता है शिवजी का शरीर। ईशान मंत्र सिर है। तत्पुरुष मंत्र मुख। अघोरमंत्र है हृदय। वामदेवमंत्र गुह्य। तद्योजमंत्र पाँव। शिवजी की दो अवस्थाएँ हैं - लयावस्था एवं भोगावस्था। शक्तिस्वरूपिणी देवी की भगवान में लीन होने की अवस्था है लय अवस्था। इस अवसर पर शिवशक्ति उसकी चरमस्थिति में पहुँच जाती है। भोगावस्था में शक्ति अंतर्मुख व बहिर्मुख विकास कर प्रपंच की सृष्टि करती है। निष्क्रिय भगवान पर ज्ञानकर्म प्रेरणा हेतु दबाव भी डालती है। निकटस्थ तंबुओं से किसी तरह की आवाज़ नहीं आ रही है। साई मीरा व उनके दोस्त नहीं होते तो इस तंबु की स्थिति भी वही होती। कैलास परिक्रमा में शामिल एक स्त्री की अनेक सीमाएँ होती हैं। लेकिन वे उन सबको नकारती हैं। श्रीलंका में जन्म लेकर सिड्नी में रहकर वहाँ से कैलास देखने आई हैं। उस मन का, धैर्य का अभिनंदन करना चाहिए। ठोस शिवभक्ति ही है मीरा की। तरीके व गैर तरीके से एकत्रित धन के साथ तराई में रहते करोडपति लोग है। अपने सिर के ऊपर तक धन का एवरेस्ट खड़ा करने हेतु वे अश्रांत परिश्रम करते हैं। नींद खराब करते हैं। बाद में रोग-परेशानियाँ उन्हें खुरेद खुरेदकर खाने लगते हैं तब उन्हें पता चलता है कि उनके द्वारा निर्मित शृंग केवल वाल्मीक था।

षाजु एवं बिजु ने टोर्च जलाकर घड़ी में देखा। मीरा एवं वे दोनों दोस्त सो चुके थे। 9.55 का समय। मन की घड़ी सही है तो कलाई में घड़ी नहीं चाहिए, अलार्म नहीं चाहिए। बीच बीच में मन की बैटरी बदलना भी नहीं होगा। कोई अन्य मरम्मत की ज़रूरत नहीं। पहले स्कूल कक्षा में पढ़ते वक्त यात्रा के पहले दिन नींद नहीं आती थी। पुस्तक देखने मात्र से सोनेवाले भी एकदम समय पर बिना किसी के बुलाए जाग जाते थे। शांति के उस छोटे तंबु से बाहर निकला। बाहर चाँदनी परत आसमानी तंबु। तंबु के बाहर ओढ़कर सुस्ताते षेर्पा एवं घोड़े। उनके लिए यह आदत हो गई है।

असहनीय ठंडक। मन की इच्छा ओढे रहने के कारण ही होगा। उसकी तीव्रता अनुभूत नहीं हुई। हाच्चु नदी उस पार के किनारे को छूकर खड़े ऊँचे पर्वत। इस पार हिमाच्छादित जांबियाङ् पर्वत। समीप में है कैलास शृंग।

जीवन में कभी भी वापस न मिलती रात। अंतिम पूजा एवं श्रीबली के बाद सारे मंदिर अब बंद हुए होंगे। वहाँ से प्रसाद स्वरूप प्राप्त चंदन एवं कुंकुम धारण कर करोड़ों भक्त अब निद्रा की ओर संचरण करते होंगे। यहाँ पर बिना श्रीमंदिर स्वर्ण रीढ़ स्तंभ व परिसर का महामंदिर है। न तीर्थ है, न प्रसाद है, न अर्चना है। न मुख्य पुजारी है या न अन्य काम। मुँह दिखाई देने पर महाशांति प्राप्त आत्मदेवालय। अपने अपने ईश्वर की स्वयं ही पूजा करने के लिए 'चेंकल शिवशक्ति मंदिर' में पहली बार पहुँचने पर वहाँ के स्वामी शिवमानस पूजा में लीन थे। सर्वलोकनाथ श्रीपरमेश को शिवमानसपूजा जाप करके भक्त मन द्वारा पूजा करने की प्रथा अलग-सी प्रतीत हो रही थी।

शिव भस्म धारण कर दाह संस्कार स्थलों पर चलकर अग्निसंस्कार स्थली पर निवसित त्रिनेत्र विरूप ही शिव है कहकर उनकी अवहेलना करते वक्त दधीची महर्षि कैलासनाथ के माहात्म्य का वर्णन करते हैं। शिवजी दाह संस्कार स्थल पर ही नहीं जनसंचयी शहर में भी निवसित हैं। अनेक रत्नसंचयों से सुशोभित है कैलास। चहुँ ओर कल्पवृक्षों से सुसज्जित कैलास की पवित्रता एवं सौंदर्य का वर्णन करना किसी के लिए भी कठिन है। ब्रह्मलोक, वैकुण्ठलोक आदि से भी सुंदर है श्रीकंठलोक कैलास।

पहले जब साक्षात् प्रकृति सतीदेवी को रुद्र ने क्रोध के साथ देखने पर शिवजी डरकेमारे किस हिमालय तराई की ओर भागे थे? महेश को भागते हुए देखकर देवी ने ऊँची आवाज़ में आक्रोशित किया। शिवजी को रोकने के लिए दसों दिशाओं में दस रूप में देवी खड़ी हो गईं। कहीं दौड़िए वहाँ भीमरूपिणी देवी- स्वरूप ही नज़र आते है। आखिर आँखें मूँदकर शिवजी एक जगह बैठ गए। आँखें खुलने पर सामने श्यामलवर्णा दिगंबरा कमल सा शोभायमान मुख धारिणी एवं चतुर्भुजा करोड सूर्य तेजस्विनी दुर्गा को देखा। संदेह मिटाने के लिए देवी ने कहा - महादेव, मैं ही हूँ आपकी सती। आदिपराशक्ति साक्षात प्रकृति। आपकी प्राणप्रिया होने के लिए स्वर्णवर्ण स्वीकार कर दक्षपुत्री बन गई। अब पिता का यज्ञभंग करने के लिए भयंकर रूप धारण किया। दसों मूर्तियों के रूप में प्रदृष्ट भगवतियाँ एक ही हैं। मेरी महाविद्याएँ ही हैं दस मूर्तियाँ - कालिका, तारादेवी, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्त, सुंदरी, बगलास्य, धूम्रवती, मातंगी आदि।

(क्रमशः)

उत्तर

1. निराला
2. चंद्रगुप्त
3. भैरव प्रसाद गुप्त
4. राजा शिव प्रसाद सिंह
5. मध्यदेशीय भाषा
6. 1954
7. भवानी प्रसाद मिश्र
8. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
9. डॉ राम स्वरूप चतुर्वेदी
10. महीप सिंह
11. बजुवान - ई रेखता
12. धर्मवीर भारती
13. सायनारायण कविरत्न
14. उदयशंकर भट्ट
15. जगन्नाथ दास रत्नाकर
16. हरिऔध
17. वल्लभाचार्य
18. श्री भट्ट
19. विक्रम वेताल की कथा
20. इश्के दुनिया व हुब्बे वतन

आत्मकथा

देवयानम्

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

पंद्रहवाँ देवपद - बंधुर तिरुवनंतपुरम

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

2013 नवंबर को मुझे केरल विश्वविद्यालय के रंगमंचीय कलाओं के (Performing Arts) विभाग के निर्देशक के पद पर नियुक्त किया गया था। दो साल तक इस पद पर बैठ कर मैंने अपनी संस्था की फिर से सेवा की थी। इसके सिवा दूसरे बहुत से महत्वपूर्ण काम मुझे करने को था। उनमें विशेष उल्लेखनीय है (1) विश्वविद्यालय के ललितकला विभाग के अध्यक्ष का काम; (2) शैक्षिक समिति (Academic Council) एवं विश्वविद्यालय की प्रबंध समिति (senate) के अंग का भारी दायित्व; (3) पाठ्य-समिति (Board of studies) और एम फिल की परीक्षा समिति के अध्यक्ष का काम आदि। 2014 नवंबर को नई दिल्ली के भारतीय विद्याभवन के सम्मेलन में भारतीय नाट्यशास्त्र की परंपरा के बारे में मैंने भाषण दिया था। इसी प्रकार चेन्नै के 'कलाक्षेत्रम' नामक संस्था के तत्वावधान में श्री स्वाति तिरुनाल के बारे में जो समारोह आयोजित किया गया था उस मौके पर भी मैंने भाषण दिया था। ये सारी बातें अत्यंत मीठी स्मृतियाँ बनकर अपने हृदय को अब आह्लादित करती हैं। विश्वविद्यालय में दो साल के लिए जो नई नियुक्ति हुई थी, उन दिनों मैंने वहाँ बहुत कुछ कार्य किया था जैसे एम फिल कोर्स का पुनः संगठन तथा उसके आधार पर दो दल (batch) के विद्यार्थियों के अध्ययन एवं परीक्षा का दायित्व। इसके अलावा मलयालम नाटकों से संबंधित तीन दिन तक का सम्मेलन संगठित किया गया था तथा उसमें प्रस्तुत किए गए निबंधों का समाहरण कर पुस्तक प्रकाशित की गई थी। श्री स्वाति तिरुनाल के एक सौ पचासवीं वर्षगाँठ (150^{th} Birthday) मनाई गई थी जिसमें बहुत से संगीतज्ञ एवं पंडितों ने भाग लिया था। इसके साथ ही 'स्वाति तिरुनालः एक अध्ययन' नामक ग्रंथ का प्रकाशन भी किया गया था। विश्वविद्यालय से निवृत्त होकर सत्रह वर्ष के बाद दुबारा वहाँ पहुँच कर इतने सारे गंभीर तथा महत्वपूर्ण कार्य मैं कर सका यह तो भगवान की इच्छा ही है। फिर; चेन्नै के 'कलाक्षेत्रम' में अनुसंधान करने के लिए मुझे 'टागूर नाशनल रिसर्च स्कोलरशिप' मिला था; परंतु अपनी शारीरिक अस्वस्थता के कारण दिश की यह उन्नत एवं प्रमुख छात्रवृत्ति (scholarship) स्वीकार कर मैं यह खोज न कर सका।

तिरुवनंतपुरम की एक विख्यात सांस्कृतिक समिति थी 'सूर्या' जिसके प्रमुख कार्यकर्ता थे श्री कृष्णमूर्ति। हर साल वहाँ संगीत-नृत्य संबंधी कार्यक्रमों में मैं भी भाग लिया करता था। वहाँ नाट्यशास्त्र से संबंधित कार्यशाला के निर्देशक के रूप में दस साल तक मैंने काम किया था। हर दिन शाम को साढ़े चार बजे से छः बजे तक मैं नाट्यशास्त्र पढ़ाता था। साहित्य के विद्यार्थी, नर्तक, एवं नाटक क्षेत्र में काम करनेवाले लोग पढ़ने के लिए आते थे। कुल मिलाकर एक सौ विद्यार्थी थे और उन्हें पढ़ाई के बाद प्रमाण-पत्र भी दिया करता था। भारत के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ एवं नर्तकों के साथ परिचय पाने के लिए मुझे यह सुअवसर मिला था। श्री कृष्णमूर्ति के घर में जाकर 'ललिता सहस्र नामं' पढ़ाने का अवसर भी मुझे मिला था।

'भारतीय विचार केंद्रम' नामक संस्था के द्वारा भगवद् गीता से संबंधित तीन दिन का समारोह किया गया था। उस संस्था के निर्देशक थे श्री परमेश्वर जी। समारोह में प्रस्तुत किए गए निबंधों के संशोधन का दायित्व उन्होंने

मुझ पर सौंपा और 2001 सितंबर को 'भगवद् गीता आन्ट मोर्डेन प्रोब्लम्स' (Bhagavad Geetha and modern Problems - भगवद् गीता और आधुनिक समस्याएँ) नामक ग्रंथ के रूप में वे सारे निबंध प्रकाशित किए गए थे। भारतीय विचार केंद्र के परिश्रम के फलस्वरूप स्वामी विवेकानंद के एक सौ पचासवीं वर्षगाँठ मनाया गया था। उस समय भारत के आदरणीय उप राष्ट्रपति ने स्वामी जी के एक काँसे की मूर्ति का अनावरण किया था। उस दिन के सम्मेलन में मुझे स्वामी जी की एक छोटी सी मूर्ति उपहार में देकर सम्मानित किया गया था।

यहाँ शास्तमंगलम के श्रीरामकृष्ण आश्रम में बहुत साल से मैं आध्यात्मिक विषयों पर भाषण दिया करता था। उसी प्रकार अपने गाँव हरिप्पाटु के श्रीरामकृष्ण आश्रम में भी कभी कभी भाषण देने के लिए मैं जाता था।

तिरुवनंतपुरम के आकाशवाणी स्टेशन के निर्देशक तथा दूसरे कर्मचारियों के साथ भी मेरा घनिष्ठ संबंध था। उनमें प्रमुख थे श्री जी पी एस नायर, श्री पी माधवन नायर (मालि), एस कृष्णमूर्ति, पी केशवदेव, टी एन गोपिनाथन नायर आदि। इस स्टेशन से मेरे बहुत से संवाद प्रसारित किए गए थे। केवल संवाद ही नहीं मेरे गीति रूपक, समाज के उन्नत व्यक्तित्वों के साथ अपना साक्षात्कार आदि भी इस स्टेशन से प्रसारित किए गए थे। उनमें से 'ऋतुवंदनम' नामक अपना गीति रूपक पुरस्कृत किया गया था और नई दिल्ली में भारत सरकार के प्रसारण विभाग के मंत्री श्री वी एन गाडगिल ने अपने हाथों मुझे यह पुरस्कार समर्पित किया था। श्री स्वाति तिरुनाल के बारे में मैंने एक महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक गीति रूपक रचा था जो आकाशवाणी के अभिलेख रक्षालय (archives) में सुरक्षित रखा गया था। मेरे बारे में भी कोई साक्षात्कार अभिलेख किया गया था। तिरुवनंतपुरम दूरदर्शन केंद्र, जयहिंद टी वी, एशियानेट, सूर्या टी वी आदि के द्‌वारा मेरा साक्षात्कार संप्रेषण किया गया था। आदरणीय श्री रंगनाथानंद स्वामी और प्रोफेसर जी बालकृष्णन नायर के साथ किए गए अपना साक्षात्कार दूरदर्शन और आकाशवाणी के द्‌वारा क्रमशः संप्रेषण-प्रसारण हुए थे। प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री टी वी गोपालकृष्ण, एम एस अनंतरामन, श्री सुब्रह्मण्य शर्मा आदि का साक्षात्कार मैंने दूरदर्शन के लिए किया था और मेरा प्रिय शिष्य श्री पी बालकृष्ण ने अपना साक्षात्कार भी दूरदर्शन के लिए किया था। (क्रमशः)

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक

मूल : श्रीकुमारन तंपी **अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार**

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

अब मेरी माँ के शब्दों को ही याद करके बताऊँगा। दूकान में स्टोक का निरीक्षण करना, दिन में कितना कलक्शन आया यह पूछना... ऐसे कार्यों में बड़े भाई ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। दूकान चलानेवाले अनुयायी धीरे धीरे धनिक बन गए। किराए में बसनेवाले एक व्यक्ति ने ज़मीन खरीदकर घर बनाया। दूसरे एक व्यक्ति ने घर की मरम्मत की। तीसरे ने अपनी बेटी की शादी धूमधाम से मनाई। एक दिन ऑयिल मिल स्थित स्थान पर आग लगी। हिसाब पूछने पर चाचाजी द्वारा नियुक्त नौकर ने ही बचने के लिए वह धोखा किया था... जो भी हो, 'मेडियल सूपर मारकेट' भी नुकसान में पड़ा। दंत चिकित्सा में चाचाजी का ध्यान टिक न सका।

पूरी संपत्ति को नष्ट होते हुए देखकर पत्नी रोज चाचाजी को कोसने भी लगी। नए नए फैशनों में आभूषणों के निर्माण में असमर्थ होने की स्थिति को दादी शंकरियम्मा ने शाप दिया। परिवार को कुछ वर्षों से घेरकर ख़ड़े अपमान की छाया ने भी दूसरों से अधिक चाचाजी को दुखी बनाया। परदादी की छोटी पुत्री और मेरी माँ का समवयस्क भार्गवी तंकच्ची द्वारा की गयी एक कठोरता ने ही परिवार को अनिश्चित स्थिति में डाल दिया था। पंत्रहवीं वर्ष की आयु में उसका विवाह निश्चय हुआ। मावेलिक्करा के पास इरवंगरा के बड़े नायर परिवार का सदस्य एक उण्णित्तान ही वर बना। वे आकर लड़की को देखकर चले गए। चाचाजी बड़ी माँ समेत सारे रिश्तेदारों को लड़का अच्छा लगा। बहुत बड़ा परिवार। वे भी साहित्य प्रेमी और कथकळी प्रिय थे। सगाई के बाद एक मामूली कार्य बताने की तरह भार्गवि तंकच्ची ने अपनी माँ से कहा : "यह शादी मुझे नहीं चाहिए।" प्रतापी भाइयों को भी लक्ष्मण रेखा के अंदर खड़ा करनेवाली कार्त्यायनी तंकच्ची चौंक पड़ीं।

"क्या बात है? इस परिवार की लड़कियों को दसवें साल में शादी करायेगी। तुझे सयानी हुए तीन साल हो गए। अभी तक तू बिना शादी किए रहना ही अपमान है।"

"अब मुझे शादी नहीं चाहिए।"

"कारण क्या है?"

"यह माँ को जानने की आवश्यकता नहीं।"

"मैं तेरी माँ हूँ। मेरे बिना फिर किसको जानना चाहिए है?"

"मैं। सिर्फ मैं।शादी मेरी। वह कब, कैसे करना है यह मैं निर्णय लूँगी।

"परिवार की किसी भी शादी का निर्णय पुरुष ही लेते हैं। यही देश की रिवाज़ है।"

मेरे संबंध में एक परिवर्तन आवश्यक है। माँ इसे चाचाजी को बताना चाहिए।

ऐसी एक घटना तब तक पुन्नूर परिवार में नहीं हुई थी। चाचाजी एवं भाई जिस लडके को दिखाता है, उसके सामने गला दिखा देना, यही, सिर्फ यही लडकी का कर्तव्य है। बड़ी माँ ने पहले आए गुस्से को काबू में रख कर वात्सल्य शब्दों में लपेट कर धीरे से बताया:“मेरी लालडी.... मुझ से जो बताया, काफ़ी है। अगर अंबु यह सुन लें तो क्या होगा, यह तो बता नहीं सकता। तेरा भाई त्रिविक्रमन डॉक्टर परीक्षा के लिए पढ़ रहा है। वह तुझे मारकर तालाब में डुबो देगा....”

अगर धीरज है तो छोटा भाई मुझे पैरों से कुचलकर मार दें। मैं मर जाऊँगी। “फिर बड़ी माँ संहार रुद्रा के रूप में बदल गई। ... बेटी को ज़ोर से पैरों से कुचल दिया। भार्गवि तंकच्ची बेहोश होकर गिर पड़ी...।

कोलाहल सुनकर चेल्लम्मा तंकच्ची दौड़कर आईः माँ, उसको क्या हुआ माँ? बिना कुछ भावपरिवर्तन के, धीरे से बड़ी माँ ने बताया : उसे माहवारी है। पिछले दो महीनों से ऐसा ही है। इसीलिए ही मैंने उसे उत्तरी बरामदे में लिटा दी थी। तू वहाँ जाकर साथ देने के लिए मत जा...” फिर भार्गवी तंकच्ची चुप रही। कुछ भी विरोध नहीं किया। बेटी एक ही लात से अपने वश में आ गई, ऐसा कार्त्यायनी तंकच्ची को लगा। अपनी अधिकार शक्ति के बारे में सोचकर अभिमान से पुलकित भी हुई। पुन्नूर परिवार के किसी भी पुरुष को वधु के विरोध के बारे में या उसके लिए माँ के दिये गये दंड के बारे में जानकारी तक नहीं हुई। शादी हो जाने तक माँ और चाचाओं को और डॉक्टरी के लिए पढ़ने वाले भाई को भी मानकर ही भार्गवी तंकच्ची ने आचरण किया। इस प्रकार शादी संपन्न हुई। सब खुश हो गए। बिलकुल शांति से मेरी दादी माँ ने कहा : “अब मेरी भवानी को भी एक रिश्ता पक्की हो जाए तो मन को शांति मिल सकती।” “सब हो जाएगी माँ।” बड़ी माँ ने कहा। शादी के बाद लड़के के घरवाले और रिश्तेदार सद्या (विशिष्ट भोजन) खाकर लौटेंगे। लड़का लड़की के घर में ठहरेगा। सुहाग की प्रथम रात्रि लडकी की घर में ही होनी चाहिए। ऐसा शर्त है। दो या तीन दिन बीतने पर लड़का और लड़की एवं लड़की के मुख्य रिश्तेदार आदि लड़के के घर में जायेंगे। इसे ‘लड़के के घर देखने का कार्य’ कहा जाता है। अधिकांश रूप में उसी दिन में ही लड़का और लड़की, लड़की के घर में लौट जायेंगे। फिर दामाद पत्नी के घर में रहेंगा। पत्नी की जायदाद आदि की देखरेख करके वहाँ सुखी जीवन बिता सकेगा।

लेकिन भार्गवी तंकच्ची के संबंध में कुछ परिवर्तन हो गए। प्रथम सत्रि बीत गई। ब्रह्ममुहूर्त में जागकर नहाने के बाद बड़ी माँ को नामजपन करने की आदत थी। उसका एक कारण भी है। बड़ी माँ को दसवें साल में शादी करनेवाले पच्चीस साल की उम्र का व्यक्ति, बड़ी माँ की जेष्ठ संतानें रूपी चेल्लम्मा तंकच्ची और त्रिविक्रमन तंपी के जन्म के अधिक दिन बीतने से पहले मर गए। तब बड़ी माँ की उम्र पच्चीस भी नहीं हुई थी। इसलिए बड़े चाचाजी चात्तु तंपी ने ही भान्जी की पुनः शादी करा दी। उस रिश्ते से उत्पन्न बेटी है भार्गवी तंकच्ची। बिना अधिक देरी के, दूसरे पति भी मर गए। इस दुख ने ही बड़ी माँ को भक्तिमार्ग की ओर ले गया होगा। पर अनुसरणहीन बेटी को पैरों से कुचलते समय भक्ति सब दूर खड़ी रहेगी। (क्रमशः)

SREE NARAYANAGURU OPEN UNIVERSITY

UG & PG ADMISSION 2025

• 17 UG PROGRAMMES • 12 PG PROGRAMMES
• 3 CERTIFICATE PROGRAMMES

LAST DATE TO APPLY ONLINE 10-09-2025

Enquiry : 9188909901, 9188909902
IT Support : 9188909903

KERALA HINDI PRACHAR SABHA

Leaner Support Centre

ISO 9001: 2015

BA :Malayalam, Hindi, English, Sociology, MA : Hindi

श्रीनारायणगुरु मुक्त विश्वविद्यालय

श्रीनारायणगुरु मुक्त विश्वविद्यालय ने केरल हिंदी प्रचार सभा को शिक्षार्थी समर्थन केंद्र के रूप में स्वीकृति दी है। फलस्वरूप केरल हिंदी प्रचार सभा में निम्नलिखित कोर्स की अनुमति मिली है।

स्नातक कोर्स
- बी ए मलयालम
- बी ए हिंदी
- बी ए अंग्रेज़ी
- बी ए सोश्योलजी

एम ए : ♦ हिंदी (स्नातकोत्तर)

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:

डॉ पी जे शिवकुमार
संयोजक, केरल हिंदी प्रचार सभा
मो: 7907807622

अधिवक्ता (डॉ) मधु बी
मंत्री, केरल हिंदी प्रचार सभा
मो: 9446458256

श्री. श्रीकुमारन तंपी आशीर्वाद भाषण दे रहे हैं।

सुगम हिन्दी परीक्षा पुरस्कार वितरण-कोष़िक्कोड और पय्यन्नूर

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-08-2025
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

AUGUST 2025

Vol. No. 62, Issue No.05
Regn. No. KL/TV(S) 381/2025-2027
Price Rs. 40/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

सुगम हिन्दी परीक्षा पुरस्कार वितरण-विविध दृश्य

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित प्रो.डी.तंकप्पन नायर, डॉ.एम.एस.विनयचन्द्रन व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014
Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair, Dr.M.S.Vinayachandran and Dr.Renjith Ravisailam